(सत्तर श्लोकी-मूल)

प्राचीन
दुर्लभ श्रीमद्भगवद्गीता

मूल लेखक
कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास

समीक्षक एवं शोधकर्ता
मंगलानन्दपुरी सन्यासी

सम्पादक
लाजपत राय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

प्रकाशक
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर गाजियाबाद-२०१००१
(उत्तर प्रदेश) भारत

द्वितीय संस्करण
जून सन् २००७ ई०

मूल्यः भारत में - साठ रुपये
विदेशों में - पन्द्रह ड़ालर

नोटः- यह दुर्लभ पुस्तक लगभग पिचासी वर्षों बाद पहली बार प्रकाशित कराई गई है।

आभाराभिव्यक्ति

लाजपत राय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

मेरी चिरकाल से इच्छा थी कि मूल गीता के दर्शन किये जायें, परन्तु काफी प्रयास के बाद भी मुझे नहीं मिली।

मैंने अनेकों विद्वानों के मुख से सुना था कि कोई सत्तर श्लोकी गीता है, जिसे **"बालीद्वीप"** से **"श्री मंगलानन्द सन्यासी"** जी ने उपलब्ध करा कर प्रकाशित कराया था, जिसका प्रकाशन सन् १९२५ ई० के आसपास हुआ था। वही मूल गीता है, उसके बाद तो कालान्तर में प्रक्षेपक होते-होते यह सात सौ श्लोकों तक पहुंच गई है।

इस विषय पर अनेकों विद्वानों के ग्रन्थ भी पढ़ने व देखने में आये जैसे गीता परिशीलन, गीता विमर्श, गीता विवेचन, गीता पर ४२ प्रश्न आदि-आदि जिनका अध्ययन करने पर इस मूल गीता को देखने की इच्छा और भी ज्यादा हो गयी।

अन्ततः मैं हमेशा की भांति इस बार भी फरवरी सन् २००७ई० में टकांरा (ऋषि के जन्म स्थान) में वहां के अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय के वार्षिक उत्सव एवं ऋषि बोधोत्सव पर साहित्य प्रचार के लिए गया हुआ था, जहां **सम्मानीय श्री आचार्य विद्यादेव** जी का मेरे साथ अतीव स्नेह है, उसका कारण है कि वह मेरे द्वारा मिशनरी भाव से किये जा रहे कार्यों से अत्याधिक प्रभावित हैं। यह मेरा सौभाग्य है।

वहां जाने का सबसे बड़ा लाभ मुझे यह होता है कि सारे देश विदेश के आर्य सज्जन जो मुझसे प्रेम-प्रीती रखते हैं, उनसे मिलना हो जाता है, वैसे मैं कितना भी धन खर्च करूँ तथा कितना भी प्रयास करूँ एक साथ उन सभी का मिलना नितान्त मुश्किल है।

वहां मुझे मेरे प्रिय भक्त एवं साथी **"श्री अल्पेश जी आर्य, ५३१/५१ गुजरात हाऊसिंग बोर्ड, के०एस०ई०जेड० गांधीधाम (कच्छ) गुजरात"** से मिलना हुआ। आप बड़े ही स्वाध्यायशील एवं पुराने ग्रन्थों के बड़े ही खोजी हैं। वार्तालाप के दौरान आपने मुझे इस पुस्तक के बारे में बताया, और आश्वासन दिया कि पुनः मुद्रण हेतु मैं आपको इसकी प्रति उपलब्ध करा दूंगा!

श्री अल्पेश शास्त्री जी ने गांधीधाम जाकर मुझे इसकी फोटो कापी भिजवा दी। जिसे देखकर व अध्ययन करने के बाद मैंने अन्तःकरण से उनका धन्यवाद किया और तुरन्त इसका सम्पादन कर पुनर्मुद्रण हेतु प्रैस में दे दिया।

अच्छे और निस्वार्थ भाव से कार्य करने वालों की प्रशंसा होनी ही चाहिये, अतः **"श्री अल्पेश शास्त्री जी बधाई के पात्र हैं,"** मैं उनका पुनः हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

वैदिक धर्म का....................

"लाजपत राय अग्रवाल"

(वैदिक मिशनरी)

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ सं.
१.	प्रस्तुत, प्राचीन- दुर्लभ श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठ भूमि..	७
२.	गीता के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्तियाँ..................	१६
३.	गीता हमें क्या शिक्षा देती है ?..............................	२०
४.	सात सौ के स्थान पर सत्तर श्लोक (प्रथम अध्याय).....	२३
५.	सत्तर श्लोकी गीता कहाँ से मिली? (दूसरा अध्याय)...	२६
६.	इस सत्तर श्लोकी गीता को ही क्यों प्राचीन माना जाये? (तीसरा अध्याय)............................	३३
७.	मूल श्लोकों की संख्या (चौथा अध्याय)..........	४१
८.	सत्तर श्लोकी गीता की विषयानुक्रमणिका (पाँचवाँ अध्याय)..	४३
९.	इस मूल गीता की अपूर्वता (छठवाँ अध्याय)...	४७
१०.	प्राचीन श्रीमद्भगवद्गीता (७०० के स्थान में ७० श्लोक)	५२
११.	अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के उद्देश्य एवं कार्य.........	९५
१२.	अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित विशिष्ठ साहित्य की सूची-.............................	९६

*

प्राचीन- दुर्लभ श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठ भूमि

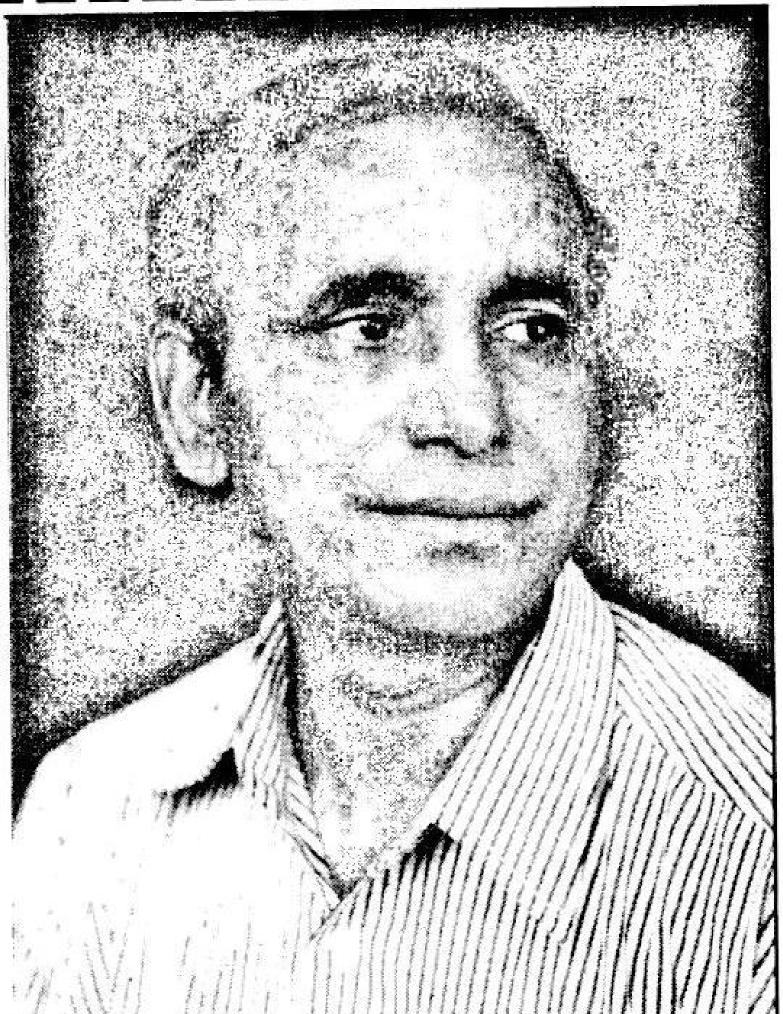

लाजपत राय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

लगभग पाँच हजार वर्ष पहले इस **"आर्यवर्त्त"** देश का वह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण समय था जब एक पारिवारिक कलह ने **"महाभारत"** का रूप लिया।

गीता भी उसी का एक अंश मात्र है जो आज हमारे साहित्य की एक अनमोल निधि है। प्राचीन काल से आज तक अनेकों संस्कृत वांग्मय के प्रमुख आचार्यों ने गीता पर अनेकों भाष्य व शोध किये।

मैं समझता हूँ इतिहास में बाइबिल के बाद अनेकों भाषाओं में अनुवाद होने का स्थान अगर किसी ग्रन्थ को प्राप्त है तो वह गीता को कहा जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गीता का उपदेश जनमानस के लिए कल्याणकारी है, परन्तु अगर गीता पर शोधात्मक दृष्टि से दृष्टिपात किया जाये तो सैद्धान्तिक रूप से वह वेदानुकूल खरी नहीं उतरती।

गीता का प्रादुर्भाव कैसे हुआ? उसकी मूल स्थिति क्या थी? जो आज अतिश्योक्ति के रूप में बढ़ते-बढ़ते शैतान की आँत की तरह सत्तर से सात सौ श्लोकों तक पहुंच गई है। यह भी कौन कह सकता है कि आगे आने वाले हजार दो हजार वर्षों पश्चात बढ़ते-बढ़ते यह भी एक लघु महाभारत का रूप ले ले, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हमें अपनी प्राचीन धरोहर को बिगड़ने से बचाना है। उसकी सुरक्षा करनी है। आज गीता के साथ ही नहीं अपितु समग्र संस्कृत साहित्य और भारतीय इतिहास का नाश किया जा रहा है, जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के साथ अन्याय है, तथा दुश्मनों की एक सोची समझी चाल है। जो लोग भारतीय संस्कृति और सभ्यता के तथा भारतीय इतिहास के घोर दुश्मन हैं उनके द्वारा ही इस तरह का षड़यन्त्र चलाया जा रहा है।

गीता से पहले हमें महाभारत की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना पड़ेगा, क्योंकि गीता महाभारत का ही एक अंग है, जिसे हुए लगभग पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

कहते हैं कि प्राचीन काल में एक "**दुष्यन्त**" नाम का राजा हुआ।

जिसने कण्व ऋषि की पालिता कन्या **"शकुन्तला"** से विवाह किया, इनका पुत्र **"भरत"** हुआ, जिसके नाम पर इस **"आर्यवर्त्त"** देश का नाम **"भारत"** कहा जाने लगा। इसी वंश में अनेकों राजा हुए, उन्हीं में से एक राजा **"कुरू"** हुआ जिसके कारण कौरव वंश की उत्पत्ति हुई। कौरव वंश के इन राजाओं में सदियों बाद एक राजा हुआ जिसका नाम था **"शान्तनु"**।

शान्तनु की रानी का नाम **"गंगा"** था जिससे उसका पुत्र **"देवव्रत"** हुआ। कहा जाता है कि एक बार शान्तनु विहार के लिए निकले तो एक निषादराज (मल्लाह) की लड़की जिसका नाम **"सत्यवती"** था वह उस पर मोहित हो गये। उन्होंने सत्यवती से विवाह करना चाहा, परन्तु उसके पिता निषादराज ने यह शर्त रख दी कि यह तभी सम्भव हो सकता है अगर देवव्रत राजगद्दी पर न बैठे और उस गद्दी पर सत्यवती से होने वाली सन्तान ही बैठे।

इस शर्त को सुनकर महाराजा शान्तनु दिन-रात चिन्ता में डूबे रहते थे। जिससे दिन पर दिन उनकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बिगड़ने लगी।

जब इस बात का पता उनके बेटे देवव्रत को लगा तो उसने सार्वजनिक रूप से प्रतिज्ञा की कि **"वह राज्य के अपने अधिकार को छोड़ता है तथा वह भविष्य में कभी भी विवाह नहीं करेगा।"** जिसके बाद में कभी भी यह राज्याधिकार का सवाल ही न उठे। यह एक ऐसी प्रतिज्ञा थी जिसे इतिहास में **"भीष्म प्रतिज्ञा"** के नाम से पुकारा गया, जिसका देवव्रत ने आजीवन अक्षरशः पालन किया। इसी प्रतिज्ञा के कारण इतिहास में देवव्रत का नाम **"भीष्म"** पड़ा।

शान्तनु ने निषादराज की कन्या सत्यवती से विवाह किया जिससे उसके दो पुत्र हुए "१. **चित्रागंद**, २. **विचित्रवीर्य।"** चित्रांगद लड़ाई

में मारा गया और विचित्रवीर्य राजा बनकर राजगद्दी पर बैठा, उसकी दो पत्नियाँ थी, जिनका नाम "**१ अम्बिका, २ अम्बालिका**" था।

विचित्रवीर्य अत्यन्त विषयी होने के कारण वह जवानी में ही क्षय रोग हो जाने के कारण मर गया तथा अपने पीछे दो पुत्रों को छोड़ गया, जिनका नाम "**धृतराष्ट्र**" व "**पाण्डु**" था।

रानियों की गलतियों का परिणाम* उनकी सन्तानों को मिला, जैसे धृतराष्ट्र जन्म से अन्धा था। तथा पाण्डु जन्म से पीलिया रोग से ग्रसित था। इस स्थिति में इन बच्चों के पालन पोषण का सारा भार पितामह भीष्म जी के कन्धों पर आ पड़ा।

अन्ततः धृतराष्ट्र तथा पाण्डु की शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि का दायित्व भी पितामह भीष्म जी ने ही निर्वहन किया। भीष्म ने धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार देश के राजा सुबल की पुत्री "**गान्धारी**" से तथा पाण्डु का विवाह कुन्तिभोज की धर्मपुत्री "**प्रथा**" अर्थात् कुन्ती से करा दिया। धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे होने के कारण राजगद्दी पर नहीं बैठाये गये, इस स्थिति में पाण्डु राज करने लगे। परन्तु शिकार करते समय अनजाने में गलती से पाण्डु के द्वारा किसी ब्राह्मण की हत्या हो

***महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" अवश्य पढ़ें, जिसमें माता-पिता के द्वारा किये गये उलटे सीधे सम्भोग के कारण ही विकारित सन्तान पैदा होती है। इसलिए महर्षि ने वहां जन सामान्य के हितार्थ उचित दिशा निर्देश किया है। यह विकार सभी पुराणों की देन है, जिन्होंने हमारे जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करके रक्खा हुआ है।**

महाभारत में क्वीदन्ती है कि एक रानी ने गर्भाधान के समय आँखें बंद कर ली थी, जिसके कारण अन्धी सन्तान पैदा हुई दूसरी भय के कारण पीली पड़ गयी थी, जिसके कारण जन्म से ही पीलिया रोग से ग्रस्ति पाण्डु पैदा हुए इन्हें महर्षि वेद व्यास द्वारा न्योगज्य पुत्र कहा जाता है।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

जाने के कारण वह उसका प्रायश्चित करने के लिए जंगल में तपस्या करने को निकल गये और उनकी अनुपस्थिति में धृतराष्ट्र अन्धे होते हुए भी राज्य करने लगे। क्योंकि भीष्म जी अपनी प्रतिज्ञा से बन्धे हुए थे, तथा अन्य कोई रास्ता था ही नहीं।

धृतराष्ट्र की सौ सन्तानें बताई जाती हैं, तथा पाण्डु की पाँच। धृतराष्ट्र की सन्तान जैसे दुर्योधन आदि को **"कौरव"** तथा पाण्डु की सन्तानों को **"पाण्डव"** कहा जाता है, जबकि ये सभी मूलरूप से थे कौरव वंश के ही। समय बीतता गया, ये सभी बच्चे बड़े हो गये, जिनमें **"धृतराष्ट्र"** सबसे बड़े थे।

महाभारत का युद्ध एक ही वंश के एक ही घर के लोगों की आपसी लड़ायी थी, जिसको कृष्णद्वैपायन महर्षि वेदव्यास ने एक महाभारत रूपी उपाख्यान का सहारा लेकर व्यक्ति की मानसिक वृत्तियों के संघर्ष के रूप में खाका खींचा था। यह अलग बात है कि उनके द्वारा खींचा गया वह चित्रण कितना बड़ा था? जो आज बढ़ते-बढ़ते एक गधे का बोझ बन गया है। यह अन्याय केवल महाभारत के साथ ही हुआ हो, ऐसी बात नहीं है हमारे लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों के साथ यह अन्याय बरता गया है, जिनके करने वाले हमारी सभ्यता और संस्कृति व इतिहास के घोर शत्रु **"यवन** और **"अंग्रेज"** ही थे* ।

***देखिए हमारे द्वारा प्रकाशित व प्रचारित एतिहासिक साहित्य, जिसके द्वारा इन लोगों के क्रियाकलापों का पर्दाफाश हो जाता है इनके द्वारा किस तरह हमारे विशालकाय पुस्तकालयों को जलाया गया? तथा हमारे धर्मग्रन्थों में मिलावटें की गई? जिसमें इन लोगों का केवल एक मात्र उद्देश्य भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को नष्ट-भ्रष्ट करना था। उस साहित्य की लम्बी सूची है, आप प्रकाशन से पत्राचार कर इन पुस्तकों को अवश्य मंगवाये तथा उनका अध्ययन करें।**

- "लाजपत राय अग्रवाल"

अतः भाईयों ! पाण्डु थे नहीं, और धृतराष्ट्र अन्धे थे, अन्ततः इस पूरे कौरव दल और पूरे परिवार का बोझ भीष्म जी के कन्धों पर ही था, इसलिए भीष्म पितामह ने इनकी शिक्षा दीक्षा व शस्त्राशस्त्र विद्या का ज्ञान कराने के लिए **"द्रोणाचार्य"** को नियुक्त कर दिया, जहां ये सभी भाई एक साथ शिक्षा ग्रहण करने लगे।

बीच-बीच में इन सभी के अन्दर कुछ ऐसी भी घटनाएं घटित हुई, जिनके कारण इनमें परस्पर ईर्ष्या-द्वैष की भावनाओं ने जन्म ले लिया। उदाहरणतः द्रौणाचार्य जी ने इनकी शिक्षा समाप्त होने पर एक दिन सभी राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र विद्या के कला कौशल का प्रदर्शन दिखाने के लिए आमन्त्रित किया।

इस समय भीम तथा दुर्योधन अपनी कला कौशल दिखलाने के लिए रंगभूमि में उतरे। इन दोनों में जो आन्तरिक वैमनस्व था, उसके कारण वे इसे प्रदर्शन न समझकर परस्पर एक दूसरे का घोर शत्रु समझकर एक दूसरे पर वार करने लगे। गुरु द्रौणाचार्य ने बीच में पड़कर स्थिति को सम्भाला और अर्जुन को अपने कला कौशल दिखलाने को कहा।

अर्जुन की बाण विद्या की निपुणता को देखकर चारों तरफ हर्षनाद होने लगा। तब इससे चिढ़कर कर्ण को जोश आया और उसने अर्जुन को ललकारा, स्थिति को बिगड़ते देख द्रौणाचार्य ने कर्ण से कहा कि-

"कर्ण ! अर्जुन राजघराने का राजकुमार है, तुम भी अपने माँ-बाप का राजकुल का परिचय दो, तभी तुम दोनों का मुकाबला हो सकता है।"

कर्ण क्योंकि अपने को सूत पुत्र समझता था, इसलिए उसका सिर लज्जा से झुक गया, इस पर दुर्योधन ने ललकार कर कहा-

"यदि अर्जुन कर्ण के साथ इसलिए नहीं लड़ना चाहते, क्योंकि वह राजा नहीं है, तो मैं कर्ण को इसी समय "अँग देश" का राजा घोषित करता हूँ।"

इन सब घटनाओं से कौरव और पाण्डवों में दिनों दिन बढ़ता हुआ पारस्परिक वैमनस्व और भी प्रचण्ड होता चला गया। मानव के मानस पटल में बीती घटनाएं भविष्य के लिए तदनुरूप ही आधार बन जाया करती हैं। जैसा कि वे घटित होती हैं। यहां भी वही हुआ और कौरव-पाण्डवों के बीच दुश्मनी की एक दीवार बन कर खड़ी हो गयी।

युधिष्ठिर सबसे बड़े थे, जनता भी उन्हीं को चाहती थी, परन्तु भला दुर्योधन ये सब कैसे सहन कर सकता था? अतः वह एक दूसरे के दुश्मन बन गये, फलस्वरूप **"वारणावत"** की घटना के साथ-साथ और भी अनेकों घटनाओं ने जन्म लिया। युधिष्ठिर का कर्त्तव्य यद्यपि सभी भाईयों के साथ समान न्याय करना था, परन्तु दुर्योधन की हठ के आगे उन्हें भी हथियार डालने पर मजबूर होना पड़ा।

अनेकों घटनाएं ऐसी हैं, जिनका यहां विस्तार भय से वर्णन करना मुश्किल है। इन घटनाओं के कारण उनमें परस्पर दूरियाँ बढ़ती चली गई। अब प्रश्न पैदा हुआ कि राज्य का बंटवारा कैसे हो? बस यहीं आकर बात रूक गयी और एक **महाभारत** ने जन्म ले लिया। जब दुर्योधन ने साफ शब्दों में कह दिया था कि-

"हे केशव ! बिना लड़ायी के मैं एक सूंई की नोक के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं हूँ ।"

पितामह भीष्म, धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, महाराज श्री कृष्ण आदि अनेकों महापुरुषों के सब प्रयास विफल हो गये और अन्ततः युद्ध का उद्घोष हो ही गया।

चारों ओर देश-देशान्तरों की विशाल सेना और एक से एक दिग्गज यौद्धा रणभूमि में एक दूसरे के खून के प्यासे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित तैयार खड़े हुए हैं, तभी अर्जुन को अचानक यह भयावह दृश्य देखकर **"अवसाद"** की स्थिति उत्पन्न होती हैं, और बस ! यहां होता है एक **"गीता"** का जन्म, जिसे **"भगवद्‌गीता"** भी कहते हैं, अर्थात् भगवान श्री कृष्ण जी के द्वारा गाया गया- **"गायन"।**

जब भगवान श्री कृष्ण जी ने यह देखा कि ये क्या हो गया? जिसके लिए यह सब हो रहा है, वही पीठ दिखा रहा है, **"मुद्दयी सुस्त-गवाह चुस्त"** जब बारात का दुल्हा ही रूठ जाये तो बाकी बारात क्या करेगी? ऐसी स्थिति में धनुर्धर अर्जुन का **"अवसाद"** उतारने के लिए अन्ततः श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने जो उपदेश, आदेश, दिशानिर्देश और सन्देश दिया उसी को **"श्रीमद्‌भगवद्‌गीता"** के नाम से पुकारा जाता है।

अब सवाल पैदा होता है कि जहाँ ऐसी विकट स्थिति हो, कि दोनों ओर की सेनाओं के बिगुल बज रहे हों, एक दूसरे पर वार करने के लिए तैयार खड़े हों, वहां श्री कृष्ण जी द्वारा इतना लम्बा उपदेश दिया जाना सम्भव है? जो आज सात सौ श्लोकों के अन्दर एक बड़े भारी पोथे के अन्दर विद्यमान है।

इसी बात को गम्भीरता से लेने पर दिल व दिमाग सोचने पर मजबूर हो जाता है। यह गीता की संक्षिप्त रूप में मैनें **पृष्ठभूमि** लिख दी है। अब आगे गीता से सम्बन्धित अन्य विषयों पर प्रकाश डाला जायेगा।

"लाजपत राय अग्रवाल"

(वैदिक मिशनरी)

सम्पर्क सूत्रः (०१२०)-२७०१०९५

गीता के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्तियाँ

आज सामान्य तौर पर गीता का स्थान वेदों से भी ऊपर हो गया है। उसका एक मात्र कारण यह है कि वेदों का पठन-पाठन हर व्यक्ति के बस की बात नहीं है, उन्हें समझना तो बहुत दूर की बात है।

हाँ ! गीता एक ऐसा ग्रन्थ जरूर है जिसे साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति भी अच्छी तरह से पढ़ लेता है, पौराणिक जगत के अन्दर तो गीता के अनेकों संस्करण केवल हिन्दी में ही धारा प्रवाह रूप में छापे हुए हैं, जिनकी बहुधा लोग कथा करते कराते और सुनते-सुनाते हैं।

जहाँ हमारे अन्य धर्मग्रन्थों में मिलावटों की भरमार है, वहाँ गीता भी उससे अछूती नहीं रही।

परिणामस्वरूप उसमें अवतारवाद, देवतावाद, स्वर्ग-नरक, वर्ण व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में जो अवैदिक भ्रान्त धारणायें हैं उन सभी का प्रतिपादन भी मौजूद है।

एक सामान्य व्यक्ति अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार गीता पर आँख मीच कर विश्वास करता है, क्योंकि वह उसे श्री कृष्ण जी महाराज का सत्यवचन मानता हुआ स्वीकार करता है।

जिसमें इन अवैदिक मान्यताओं रूपी जहर को मिठाई में लपेटकर प्रस्तुत किया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीता की शिक्षाएं आज भी सर्वोपरि हैं,

मनुष्य मात्र की उन्नति में सहयोगी हैं, परन्तु उसमें जो अवैदिक मान्यताओं का मिश्रण प्रक्षेपक रूप में मौजूद है उसका प्रक्षालन होना नितान्त आवश्यक है।

गीता पर हर भाषा में, हर सम्प्रदाय* के विद्वानों द्वारा भाष्य किये हुए आपको मिल जायेंगे। परन्तु सभी ने एक दूसरे की देखा-देखी, प्रत्यालेपन से ही काम लिया है।

हाँ ! आर्यजगत के मूर्धन्य विद्वान खण्डन-मण्डनात्मक साहित्य के प्रणेता- **"डा० श्री राम आर्य"** (कासगंज निवासी) जी ने अवश्य गीता पर शोधात्मक दृष्टि से गीता के रहस्यमय स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है जो **"गीता विवेचन"** के नाम से उपलब्ध है।

यह ग्रन्थ भी हमारे द्वारा ही **"अमर स्वामी प्रकाशन विभाग"** के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। आप उसका अध्ययन करें तो आपकी अनेकों भ्रान्तियों का निवारण स्वत: ही हो जायेगा।

गीता में व्याप्त भ्रान्तियों की भरमार है। जहाँ सात सौ श्लोकों में छ: सौ तीस श्लोक प्रक्षेप रूप में मौजूद हों भला वहाँ भ्रान्तियाँ क्यों न होंगी? आप उन बकाया छ: सौ तीस श्लोकों को तर्क की कसौटी पर कस कर पढ़िये तो आपको मिलावट साफ नजर आ जायेगी।

गीता का स्वरूप भी ठीक हमारे अन्य सम्प्रदायों ने ठीक वैसा ही बना दिया, जैसे कि इनके मन्दिरों का है।

देखिये आप किसी भी पौराणिक मन्दिर में चले जाइये, बल्कि जितने बड़े और विख्यात मन्दिर में आप जायेंगे वहाँ यह बात कुछ ज्यादा ही आपको देखने में आयेगी। वह बात क्या है? आप देखिये,

---

*गीता का अनुवाद फारसी भाषा में भी **"दिल मुहम्मद"** द्वारा किया हुआ मिलता है जो हमारे यहाँ प्रकाशन विभाग में मौजूद है।

-"लाजपत राय अग्रवाल"

इनके देवी-देवताओं की मूर्तियाँ जिनका साज-श्रृँगार इस कदर किया जाता है कि मूर्ति का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है।

वह काफी ध्यान से देखने पर भी नजर नहीं आती और यह अन्ध श्रद्धालु भक्त वहां मत्था टेक कर हाथ जोड़कर चला आता है।

जब कोई उससे मन्दिर के बाहर आकर पूछता है कि आपने दर्शन कर लिये, वहाँ क्या देखा? तो उसका सीधा सा उत्तर होता है कि उस पर इतना श्रंगार लदा था कि मूर्ति का चेहरा तो दिखाई ही नहीं दिया और पण्डे-पुजारी ने आगे को चलने के लिये धक्का दे दिया।

बस ! यही हाल गीता के साथ हुआ है, गीता पर कालान्तर में इतना श्रंगार लादा गया है कि उसका मूल हिस्सा भी हमें आज देखना दूभर हो गया है।

अत: जब आप इस प्राचीन गीता का अध्ययन करेंगे तो मैं समझता हूँ कि आप गीता में व्याप्त भ्रान्तियों से अवश्य ही परिचित हो जायेंगे।

जब इस मूल गीता में सभी विषयों का वर्णन मौजूद है तो फिर इन सत्तर श्लोकों पर बाकी छ: सौ तीस श्लोकों का आवरण क्यों चढ़ाया गया है?

हमारा उद्देश्य गीता से किसी को विमुख करना नहीं है। अपितु उसमें जो-जो बातें वेदानुकूल हैं, वह मानने योग्य हैं। बाकी त्याज्य हैं।

वैदिक धर्म का-

"लाजपत राय अग्रवाल"

(वैदिक मिशनरी)

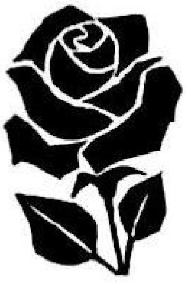

गीता हमें क्या शिक्षा देती है?

भाईयों ! अब सवाल पैदा होता है कि गीता हमें क्या शिक्षा देती है? उस पर हम कुछ प्रकाश डालते हैं।

१. गीता हमें कर्म करने का उपदेश देती है। कर्मशील होने का उपदेश देती है वह निकम्मा निटठल्ला, अकर्मण्य होने का निषेध करती है।

२. गीता हमें अमरता का ज्ञान कराती है, आत्मा और परमात्मा का बोध कराती है।

३. गीता हमें धर्म, अधर्म, वर्ण व्यवस्था का ज्ञान कराती है।

४. गीता हमें शूरवीर, निर्भीक और जीवन जीने की कला का उपदेश देती है।

५. गीता हमें ज्ञान, कर्म, उपासना और वैराग्य का वास्तविक बोध कराती है तथा ईश्वर जीव और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों का वास्तविक ज्ञान कराती है।

६. गीता हमें लोक-परलोक, सत्य-असत्य तथा अपने-पराये का बोध कराती है।

७. गीता हमें काम, क्रोध और मोह की वास्तविक स्थिति का बोध कराती है।

८. गीता हमें वैरागी बन कर घूमने का उपदेश नहीं देती जैसा कि साधु समाज में भ्रान्त धारणा है।

९. गीता हमें आर्य-अनार्य के कर्त्तव्यों से परिचित कराती है।

१०. गीता हमें स्वर्ग-नरक, यश-अपयश का रास्ता समझाती है।

पहला अध्याय
प्राचीन भगवद्गीता
(७०० के स्थान में ७० श्लोक)

श्रीमद्भगवद्गीता संसार के अनुपम ग्रन्थों में से एक है। यह महाभारत के भीष्म पर्व में है, जहां से पृथक् निकाल कर प्रचार किया गया है। वहां यह १८ अध्यायों में ७०० श्लोकों में पाया जाता है।

महाभारत-युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को शंका हो गई थी कि भाई-बन्धुओं, खास कर गुरु और पितामह पर बाण चलाना पाप है। इस शंका का उत्तर उसको भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने जो कुछ दिया था वही **"भगवद्गीता"** (भगवान् श्रीकृष्ण जी के द्वारा गायन किया हुआ) कहलाती है।

बहुतेरे लोगों का ख्याल यह है कि उस युद्धकाल में रणभूमि में खड़े-खड़े इतना भारी व्याख्यान (७०० श्लोकों में)दिया जाना सम्भव न था, किन्तु बहुत सम्भव है कि श्रीकृष्णजी ने कुछ थोड़ा-सा उपदेश दिया होगा जो पीछे से बढ़ता चला गया।

लोकमान्य पण्डित बाल गंगाधर तिलक महाराज अपने **'गीता-रहस्य'** के पृष्ठ ७ पर इसी प्रसंग को उठाकर अन्त में लिखते हैं-

"गीता की रचना के सम्बन्ध में मन की ऐसी प्रवृति होने पर गीता-सागर में डुबकी लगाकर, किसी ने सात, किसी ने अट्ठाईस किसी ने छत्तीस और किसी ने सौ मूल श्लोक गीता के खोज निकाले हैं........ यह नही कि बहिरंग परीक्षा की ये सब बातें सर्वथा निरर्थक हैं।"

निदान ! मैं स्वयं भी गत ३७ सालों से भगवद्गीता का प्रेमी हो

के कारण काफी युक्तियों के आधार पर इसी निर्णय पर आरूढ़ था कि निस्सन्देह **"श्री कृष्णार्जुन सम्वाद"** वर्तमान भगवद्गीता से बहुत ही न्यून रहा होगा।

मैं इस कोशिश में लगा था कि इस बात की जांच करूँ कि वस्तुतः कृष्णार्जुन-सम्वाद में कितने और कौन-कौन से श्लोक हो सकते हैं? परन्तु बहुत हाथ-पांव मारने पर भी यथेष्ट सफलता प्राप्त न हो सकी। इतने में मुझे यह **"७० श्लोकी गीता"** देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

मैंने इन श्लोकों को ध्यान से पढ़ा और परस्पर इनका एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध या संगति लगाकर विचार किया तो मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि भगवान कृष्ण जी का उपदेश इतने ही में आ जाता है।

मानो मूल ये ७० श्लोक थे और इन्हीं की व्याख्या में शेष श्लोक रचे गये। अतः मूल और टीका मिलकर आज ७०० श्लोकों की भगवद्गीता प्रायः सर्वत्र मिलती है।

इस प्रकार इन ७०श्लोकों की गीता के मिल जाने से मेरे अन्तःकरण में जो आनन्द प्राप्त हुआ वह कथनीय है और मैं गीता-प्रेमी भाईयों को भी अपने इस **"आनन्द"** में सम्मिलित करने के लिए इस ७० श्लोकी गीता को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करता हूँ ।

"मंगलानन्द पुरी"

(२०. अप्रैल सन् १९२५ ई०)

दूसरा अध्याय
यह ७० श्लोकी गीता हमें कहाँ से मिली ?

अब मैं पाठकों को यह बतलाता हूं कि यह ७० श्लोकी गीता कहां से और किस प्रकार प्राप्त हुई ?

इसको मैंने बाँकीपुर के साप्ताहिक **"पाटलिपुत्र"** श्रावण शुक्ला २, शनिवार संवत् १९७१ विक्रमी में पढ़ा, फिर वहां जिस लेख के आधार पर छपा था, उसको भी देखा जो सन् १९१४ ई० के जुलाई मास के **"माडर्न रिव्यू"** कलकत्ता (Modern Review) में पृष्ठ ३२ से ३८ तक प्रकाशित हुआ है।

इसके लेखक **"डॉक्टर नरहर गोपाल सर देसाई"** महाशय है। लेख का शीर्षक है:-

The Bhagavad Gita from the Island of Bali

अर्थात- बाली द्वीप से प्राप्त भगवद्गीता।

इस लेख का सारांश निम्न प्रकार है:-

बाली नामक एक छोटा-सा द्वीप जावा द्वीप के पास है। जावा टापू में हिन्दू बस्ती थी, राज्य भी हिन्दुओं का था जिसे सन् १४७८ ई० में अरब* वालों (मुसलमान जाति) ने नष्ट कर डाला। वहां के हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया जिनमें मुसलमान होने के बावजूद अब

* मेरे द्वारा लिखित पुस्तक- **"जिहाद के नाम पर दुनिया को कैसे मुसलमान बनाया गया ?"** इस विषय पर पठनीय पुस्तक है।

-"लाजपत राय अग्रवाल"

तक भी हिन्दुत्व के संस्कार पाये जाते हैं।

जावा में कुछ बौद्ध भी हैं पर अब हिन्दू नहीं हैं। यह अति प्राचीन देश है। **"वाल्मीकि रामायण*"** में इसका वर्णन **"यव द्वीप"** के नाम से आया है।

जावा द्वीप हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था और बड़े-बड़े विद्वान्, हुनरमन्द, शस्त्रधारी, शूरवीर तथा सभी प्रकार के लोग भी वहां पहुंचते थे।

बौद्ध लोग भी पहुँचे, और भारत से ब्राह्मण लोग संस्कृत की पुस्तकें लेकर वहां पहुंचे थे।

डॉक्टर देसाई जी कहते हैं कि-

मैं **"पेनांग"** देश में नौकरी पर था। वहां एक पुस्तक पढ़ते हुए अनायास मेरी दृष्टि एक शब्द **"बाली द्वीप में हिन्दू रामायण तथा हिन्दुओं के ४ वर्ण"** पर पड़ी।

निस्सेन्दह डॉक्टर देसाई जी के हृदय में स्वभावतः यह उत्कण्ठा उत्पन्न हुई कि आखिर यह **"बाली"** द्वीप कहाँ है? इसकी खोज करनी चाहिए।

नक्शा (ऐट्लस) को ध्यानपूर्वक देखकर यह ज्ञात किया कि जावा

---

* देखो प्रमाण-

यत्नवंतो यव द्वीपं सप्त राज्योपशोभितम्।
सुवर्ण-रूपकं दीपं सुवर्ण कर मण्डितम्।।

(वाल्मीकि रामायण किष्किधा काण्ड, ४०वां सर्ग ३०वां श्लोक)

अर्थ- और तुम बड़े यत्न के साथ सप्तराज-सुशोभित **"यव द्वीप"** में जाना और सुवर्णकारी पुष्पों से शोभित रूपक द्वीप में ढूंढना यह तुम्हारा कर्तव्य है। ।।३०।।

नोट- **"यव"** का **"जव"** या **"जावा"** बन गया है और इन्हीं श्लोकों में जो अन्य सुवर्ण-रूप द्वीप कहा गया है वह आजकल **"सुमात्रा टापू"** कहलाता है।

सुग्रीव ने सीता जी की खोज निमित्त जिन्हें भेजा उन्हें, बतलाया कि किन-किन देशों में वे जायें इसी बीच का यह श्लोक है।

-**"लाजपत राय अग्रवाल"**

द्वीप के पास यह **"बाली टापू"** विद्यमान है। निदान ! किसी न किसी प्रकार आपने मई सन् १९१२ ई०में बाली द्वीप को प्रस्थान fd ;kA tkok }hi d scUnjxkg **"सुर्बजा"** (Surbaja) में जाकर ठहरे, क्योंकि वहीं से बाली द्वीप को जहाज जाते हैं।

डॉक्टर देसाई जी ने बहुत कुछ चाहा कि इस सुर्बजा में बाली के हिन्दुओं का कुछ हाल ज्ञात हो, परन्तु कुछ भी पता न लगा, लेकिन अन्त में एक भारतीय मुसलमान जो बोहरा जाति वाला था वह मिल गया, जो बाली द्वीप की राजधानी बूलेलांग (Bule Lang) में रहता था और यहां व्यापारी के रूप में माल खरीदने आया था। उसने बतलाया कि बाली में पढ़े-लिखे ब्राह्मण लोग हैं जो **"पण्डा"** कहलाते हैं और उस द्वीप के एक बन्दरगाह अर्थात् **"करंग आसेम"** (Karang Assem) में एक हिन्दू राजा भी रहता है।

यह भेद पाते ही डॉक्टर देसाई महाशय इसी बन्दरगाह अर्थात् करंग आसेम वाले जहाज पर जा सवार हुए। दो दिनों की समुद्रीय यात्रा करने के पश्चात् वहां पहुंच गये।

रात को ९ बजे जहाज बन्दरगाह पर पहुंचा। अतः बिस्तरा-सामान लिये हुए उस समय तीन मील जाना परदेशी कुली के साथ कितना कष्ट-साध्य था?

अस्तु, प्रातःकाल डॉक्टर जी उस गांव में इधर-उधर घूमने लगे कि पण्डा लोगों तथा राजा जी के दर्शन करें। यह सुनकर कि राजा जी ११ बजे के पश्चात् लोगों से मुलाकात करते हैं।, डॉक्टर जी अपने मुसलमान Guide(पथ-प्रदर्शक) के साथ किसी पण्डा के मकान की तलाश में निकल पड़े।

मार्ग में यह मुसलमान पथ-प्रदर्शक वहाँ की जनता को यह सुझा रहा था कि तुम्हारे देश का यह ब्राह्मण आया हुआ है। जिसे वे लोग

आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे।

डॉक्टर जी दो तीन पण्डाओं के घरों पर पहुंचे, परन्तु वहाँ जो संस्कृत पुस्तकें हैं वे देवनागरी अक्षरों में नहीं हैं, **कवि-भाषा*** के अक्षरों में लिखी हुई हैं। वहां से निराश होकर डॉक्टर देसाई जी उस राजा के महल पर पहुंचे। राजा जी भारत के ब्राह्मण को आया देखकर दंग रह गये।

बहुतेरी बातें भारत के सम्बन्ध में पूछी, आतिथ्य-निमित्त गाय का दूध मंगाया जो वहां दुष्प्राप्य है, क्योंकि उस देश के लोग दूध सेवन नहीं करते, यद्यपि गायें वहां बहुत हैं।

डॉक्टर देसाई वहां तीन दिन ठहरे रहे और यह ज्ञात किया कि पूर्व काल में चाहे अनेकों संस्कृत ग्रन्थ वहां रहे हों, पर अब नहीं हैं। हां ! धार्मिक गाथाओं को उन लोगों ने बाली द्वीप की भाषा में लिख रखा है, जिनको वे पढ़ा व सुना करते हैं।

हमारे देसाई जी निराश होकर केवल जहाज की प्रतीक्षा में ठहरे थे कि इतने में बूढ़े राजा के नवयुवक पुत्र ने इनको बुला भेजा और अन्य बातों के सिलसिले में यह भी पूछा कि क्या हिन्दुस्तान में इस समय महाभारत के सारे पर्व मिल सकते हैं? उत्तर **"हाँ"** में पाने पर इस राजपुत्र ने एक ब्राह्मण को आज्ञा दी कि पुस्तकालय में से भीष्म पर्व निकाल लावे। यह लकड़ी के सन्दूकों में बड़ी सफाई के साथ सुरक्षित है।

ये ताड़ के पत्रों पर लिखे रखे हैं, १४ इंच लम्बे और ढाई इंच चौड़े पत्रे हैं, बीच में छेद करके डोरे से सबको नत्थी कर दिया गया है। इन

---

* इसी प्रकार बंगला वालों ने बंगला अक्षरों में तथा मद्रास (चेन्नई) वालों ने अपने तमिल, तेलुगु आदि अक्षरों में संस्कृत पुस्तकों को लिख रखा है।

ऐसे ही ताड़-पत्रों पर प्राचीन संस्कृत पुस्तकें भारत के सब भागों में सुरक्षित हैं।

-**"लाजपत राय अग्रवाल"**

पत्रों पर बाली द्वीप की कवि-भाषा में सुई से कोच-कोच कर अक्षर अंकित कर दिये गये हैं जो बहुत स्पष्ट और शुद्ध हैं।

अब भीष्म पर्व पढ़ा जाने लगा। उन बाली द्वीप निवासी ब्राह्मण का संस्कृत श्लोकों का उच्चारण ऐसा अद्भुत था कि डॉक्टर देसाई बड़ी मुश्किल से यह भाप सके कि वह संस्कृत है।

अब डॉक्टर जी के मन में ख्याल आया कि भीष्म पर्व में ही तो भगवद्गीता मौजूद है! अच्छा उसे ही निकलवाना चाहिए। पर वहां वाले भगवद्गीता नाम से सर्वथा अपरिचित थे, निदान बहुत देर तक उलट-पलट करने के पश्चात् डॉक्टर देसाई ने भगवद्गीता के कुछ श्लोकों को ढूंढ निकाला। वहां वाले संस्कृत मात्र को श्लोक कहते हैं।

डॉक्टर देसाई यह देखकर दंग रह गये कि उस बाली द्वीप के भीष्म पर्व में भगवद्गीता १८ अध्याय के स्थान में सिर्फ एक ही अध्याय है, जो २३वें से ४०वें पत्र तक है। उस द्वीप के सबसे बड़े विद्वान **"पण्डित पडंडा वयान् पिडाड"** (Padanda wayan Pidad) के द्वारा पढ़वाकर उन गीता के श्लोकों की नकल **"डॉक्टर देसाई"** ने कर ली।

श्री डॉक्टर देसाई अपने उसी लेख में यह प्रकट करते हैं कि उस बालीद्वीप वाली गीता में निम्न विशेषतायें हैं-

१- यह गीता **"धर्म क्षेत्रे"** के स्थान में **"दृष्ट्वेवं स्वजनं"** श्लोक से आरम्भ होती है।

२- इसमें अलग-अलग अध्याय नहीं हैं बल्कि सब श्लोक एक ही अंध्याय में मौजूद हैं।

३- ७०० श्लोक नहीं हैं।

४- कुछ श्लोकों का तात्पर्य वहां की कवि-भाषा में अंकित है।

५- हमारे (१८ अध्यायों वाली) भगवद्गीता के सब अध्यायों के

श्लोक इसमें नहीं हैं।

६- डॉक्टर देसाई ने इस गीता में **"भारतीय गीता"** के अध्यायों और श्लोकों की संख्या जांच कर अंकित कर दी है।

७- जिस प्रकार हम लोग गीता आदि का पाठ किया करते हैं, इसी प्रकार बाली द्वीप में एक पुस्तक **'कामन्दक नीतिसार'** का बड़ा प्रचार है।

८- बालीद्वीप वाले हिन्दू यह कहते थे कि जब सन् १४७८ ई० में जावा द्वीप पर मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ, उस समय जावा से एक ब्राह्मण वाहुराहु (Wahu Rahu)अपने धर्म की रक्षा के लिए कुछ धर्मिक पुस्तकें साथ लेकर बालीद्वीप में भाग आया था।

अत: इस बाली द्वीप में महाभारत के आठ पर्व अर्थात् आदि, विराट, भीष्म, मूसल, अस्थानिक, स्वर्गारोहण, उद्योग और आश्रमवासी मौजूद हैं, शेष पूर्व जावा द्वीप में हैं।

९- दो पर्वों **'आदि'** और **'विराट'** को डच (Dutch) सरकार ने हालैण्ड देश के हेग (Hague)स्थान में रोमन **अक्षरों*** केअन्दर छपवाया है।

१०- अगर कोई **"जावाद्वीप"** में "जाकर वहां पर स्थित **"बैटेविया विचित्रालय"** (Batavia Museum) में रक्खी हुई इन अपूर्व पुस्तकों को ध्यान से पढ़े तो जावा द्वीप का यह दुर्लभ संस्कृत-साहित्य संसार में प्रकाशित हो सकता है।

* रोमन अक्षर अंग्रेजी की ए, बी, सी, डी आदि हैं ।

"सम्पादक"

तीसरा अध्याय

इस ७० श्लोकी गीता को ही क्यों प्राचीन माना जाये ?

यह गीता कहां से और किस प्रकार प्राप्त हुई ? इस बात को मैं पहले दर्शा आया हूँ । अब प्रश्न यह है कि वर्तमान गीता के ७०० श्लोकों में से किन्हीं को नवीन और किन्हीं को प्राचीन क्यों माना जाये ?

कुछ लोगों का ख्याल यह है कि चाहे **"कृष्णार्जुन-संवाद"** थोड़ा ही रहा हो और ७०० श्लोकों को पीछे से ही किसी ने निर्माण किया हो, तो भी क्या हरज है? पूरे सात सौ श्लोकों को ही प्राचीन और प्रामाणिक क्यों न माना जाये?

हमारा उत्तर यह है कि प्राचीन ग्रन्थों की छानबीन करके यह खोज निकालना कि किस ग्रन्थ में कितना और कौन-कौन-सा भाग मूल प्राचीन है और क्या-क्या पीछे की मिलावट, क्षेपक वा टीका आदि है? यह जानना और तदनुसार मानना परमावश्यक है।

गीता की भी इसी न्याय से जांच-पड़ताल होनी चाहिए। समुद्र में डुबकी लगाने वाला जैसे समुद्र में से मोती निकाल लाता है उसी प्रकार इन शास्त्रों के गहन विषयों में डुबकी लगाने वाले भी अनेकों रत्नों को अवश्यमेव खोज निकालेंगे।

पाटलिपुत्र समाचारपत्र (बांकीपुर) के सम्पादक **"श्रीयुत काशीप्रसाद जी"** जायसवाल एम.ए. (आक्सफोर्ड) बैरिस्टर-ऐट-लॉ ने इस ७० श्लोकी गीता को प्रकाशित करते हुए जो अपना निर्णय प्रकट किया

था वह इस प्रकार है -

इस पुरानी प्रति के सब श्लोक एक साथ पढ़ने से कोई विषय-भंग नहीं मालूम होता। इसे मूल पढ़ने वाले स्वयं देख सकते हैं। गीता के मूल सिद्धान्त सभी इन सत्तर श्लोकों में आ गए हैं। विश्वरूप-दर्शन पर लम्बी स्तुति की जगह नमस्कार का केवल एक ही श्लोक इसमें है और विश्वरूप के चित्रण में केवल तीन, जिनसे वर्णन भलीभांति व्यक्त हो जाता है। भक्ति योग के दो ही श्लोक हैं जो अन्तिम श्लोक हैं ।

इसके पढ़ने से बहुतेरे लोगों के विचार में आयेगा कि भगवद्गीता का यह पुराना रूप है, जिसमें श्रीकृष्ण जी के वचन सत्तर श्लोकों में हैं। प्रचलित गीता के बड़े रूप में कोई भिन्न सिद्धान्त नहीं है। **"सत्तर श्लोकों वाली गीता की प्रति ही मूल प्रति है।"** वर्तमान गीता में मूल और टीका का समावेश है, कोई बाहर की बात नहीं है ।

मैं भी ऐसा ही समझता हूं कि मूल गीता न्यूनाधिक इतने ही श्लोकों में रही होगी। मूल का आशय समझाने के लिए और भी श्लोक रचे गये होंगे, जो मूल और व्याख्या-सहित इस समय सात सौ श्लोक मिलते हैं।

अतः मूल गीता पर श्रद्धा रखने वाले गीता-प्रेमी सज्जनों के अन्तःकरण की सन्तुष्टि का साधन मानकर मैं इस शास्त्र को प्रकाशित करता हूं।

गीता तथा जिस भारी ग्रन्थ के अन्तर्गत यह है, वह महाभारत कितने बड़े भारी परिवर्तनों का आधार बनाया गया था, इस बात पर मैं कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं -

१- महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि महाभारत के ८८०० श्लोक ऐसे हैं जिनको व्यास और शुकदेव के सिवाय और कोई नहीं जानता।

इससे यूरोपियन विद्वानों का यह विचार है कि वस्तुतः मूल महाभारत केवल ८८०० श्लोकों का ही छोटा ग्रन्थ रहा होगा।

२- फिर आदि पर्व में ही लिखा है कि व्यास जी ने २००० श्लोकों का महाभारत रचा था।

३- फिर महाभारत के दूसरे पर्व में श्लोकों की संख्या ८४,८३७ बताई गई है।

४-परन्तु आजकल के महाभारत में १,०७,३९९ श्लोक हैं।

उक्त वाक्य श्रीमान् "**कन्नोमल जी एम.ए.**" के '**गीता दर्शन**' पृष्ठ ४५ से उद्धृत किया गया है।

अब देखिये लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक अपने "**गीता रहस्य**" में क्या कहते हैं?

देखिये -'**गीता रहस्य**' परिशिष्ट भाग ४ पृष्ठ ५५७ पंक्ति ७ पर लिखा है -

"तथापि हम यह भी नहीं कहते, कि जब मूल भारत का महाभारत बनाया गया होगा, तब मूल गीता में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ होगा" ।

फिर इसी पृष्ठ की पंक्ति २२ पर कहते हैं कि -

"इसके सिवा, उक्त प्रकार के मूल परिवर्तन भी मूल गीता में हो गये होंगे।................ अतएव यही अनुमान करना पड़ता है कि मूल गीता में जो कुछ परिवर्तन हुए होंगे वे कोई महत्व के न थे, किन्तु वे ऐसे थे जिनसे मूल ग्रन्थ के अर्थ की पुष्टि हो गई है।"

फिर आगे पृष्ठ ५५८ की पंक्ति २६ में कहा है-

"यहां पर पाठकों को स्मरण रखना चाहिए, कि ये दोनों अर्थात् वर्तमान गीता और वर्तमान महाभारत वही ग्रन्थ हैं, जिनके मूल स्वरूप में कालान्तर से परिवर्तन होता रहा और जो

इस समय गीता तथा महाभारत के रूप में उपलब्ध है। ये उस समय के पहले प्राचीन मूल ग्रन्थ नहीं हैं" ।

और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के जीवन-चरित्र (स्वामी सत्यानन्द द्वारा रचित श्रीमद्दयानन्द प्रकाश) के गंगा काण्ड ११वें सर्ग पृष्ठ १५३ पर हम पढ़ते हैं -

"वैद्य रामदयाल ने स्वामी जी से कहा कि- ग्वालियर राज्य का रहने वाला एक ब्राह्मण हमें "कचुरा" में मिला था। वह कहता था कि मेरे पास कालिदास-रचित "संजीवनी" नामक एक पुस्तक है । इसमें कालिदास ने अपने समय में महाभारत के ग्यारह हजार श्लोकों और दश पुराणों की विद्यमानता प्रकट की है" ।

पाठकगण ! इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो रहा है कि-

"न तो वर्तमान महाभारत मूल ग्रन्थ है और न ही हमारी ७०० श्लोकों की वर्तमान गीता ही भगवान् श्री कृष्ण जी के मुखारविन्द की वाणी है।"

हां ! इसमें सन्देह नहीं कि लाख श्लोकों के ही अन्दर मूल महाभारत वाले आठ सहस्र श्लोक शामिल होंगे ।

इसी प्रकार वर्तमान गीता के ७०० श्लोकों में ही **"कृष्णार्जुनसंवाद"** के कुछ थोड़े वाक्य छिपे पड़े हैं।

ऐसी दशा में जब कि-

"बालीद्वीप से यह ७० श्लोकी गीता प्राप्त हुई है तो क्यों न यह मान लिया जाये कि प्राचीन गीता का मूल ग्रन्थ यही है!"

लोकमान्य तिलक जी महाराज का कथन है कि-

यह गीता "बाली" और "जावा" द्वीपों में संवत् ५३५ में विद्यमान थी।

(देखो 'गीता रहस्य' परिशिष्ट भाग ५, पृष्ठं ५५९)

अतः मानना पड़ेगा कि भारत से जावा द्वीप को महाभारत आदि ग्रन्थ पांचवी शताब्दी विक्रमी से तो बहुत पूर्व ही भेजे जा चुके होंगे !

अच्छा, अगर ५०० वर्ष पूर्व का समय माना जाये तो मानो आज से २००० वर्ष पूर्व भारत से यह गीता जावा द्वीप को गई होगी, और बहुत सम्भव है कि उस समय **"कृष्णार्जुन-संवाद"** केवल सत्तर-पिचहत्तर श्लोकों में ही रहा हो, जो भारत से जावा में जाकर सुरक्षित रह गया, किन्तु यहां श्लोक टीका और टिप्पणी व्याख्या-रूप में सम्मिलित होते गये।

प्रश्न-

परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने तो पूरे ७०० श्लोकों की गीता पर भाष्य रचा है, इसलिए यह तो मानना ही पड़ेगा कि उक्त स्वामी के समय में भी पूरे ७०० श्लोकों वाली गीता विद्यमान थी?

उत्तर-

हां ! परन्तु स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का समय विवादास्पद है। अच्छे-अच्छे विद्वानों का निर्णय यह है कि स्वामी शंकराचार्य ग्यारहवीं शताब्दी में (आज से केवल १००० वर्ष पूर्व) हुए थे । अतः बहुत सम्भव है कि आज से २००० वर्ष पूर्व गीता में केवल ७० श्लोक रहे हों और तब से लेकर स्वामी शंकराचार्य के समय तक के ११०० वर्षों में मिलावटें होकर ७०० बन गये हों ।

एक बात ध्यान देने योग्य यह भी है कि स्वामी शंकराचार्य जी ने गीता में एक श्लोक क्षेपक माना है (१३वें अध्याय का प्रथम श्लोक) उसे क्षेपक मानकर भी शामिल रहने दिया है, अतः क्या आश्चर्य है कि और भी अनेकों श्लोक क्षेपक रहे होंगे जिन्हें स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने निकाल डाला होगा ।

इसका प्रमाण भी मिलता है, सुनिये-

षट् शतानि च विंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्त पञ्चाशत् सप्त षष्टिं तु सञ्जयः।
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते॥

(महाभारत भीष्मपर्व ४३ तथा ४५)

अर्थ -६२० श्लोक केशव ने कहे हैं। ५७ अर्जुन ने, ६७ संजय ने और एक धृतराष्ट्र ने कहा है कि यह गीता की कुल श्लोक संख्या है।

इस लेखानुसार गीता में ७४५ श्लोक होने चाहियें, परन्तु उसमें केवल ७०१ ही श्लोक विद्यमान हैं।

क्या हम मान लें कि महाभारत का उक्त श्लोक बनते समय गीता में ७४५ श्लोक रहे होंगे, परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने ४४ श्लोकों को प्रेक्षपक मानकर निकाल डाला होगा।

प्रश्न- लोकमान्य तिलक महाराज तो उक्त लेख में यह सम्मति प्रकाशित करते हैं कि-

जावा और बाली टापू में जो इतने श्लोक गीता के मिले हैं, सो यह बात नहीं है कि भारत से वहां ७० श्लोकी गीता गई हो, वरन् यह बात है कि वहां वालों ने ७०० का तो अर्थ अपनी कवि भाषा में लिख लिया है, किन्तु बीच-बीच में चुने हुए श्लोक ज्यों के त्यों रख लिये हैं?

उत्तर- यह बात कहां तक ठीक है? इसकी पूरी जांच करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि कोई अन्वेषणकर्ता वहां जाकर **"कवि"** भाषा को सीखकर उन ग्रन्थों को पढ़े तो ठीक-ठीक पता लगे।

फिर तो गीता ही नहीं बल्कि महाभारत की भी जांच हो जायेगी।

क्योंकि डॉक्टर देसाई जी ने अपने इस लेख में यह भी लिखा है-

"........It seems that the Maha Bharat is in an abriged form and not as big as the Indian one."

अर्थ- ऐसा मालूम होता है कि वहां पर जो महाभारत है वह संक्षेप-रूप में है, हमारे स्वेदश जैसा भारी ग्रन्थ नहीं है।

इस प्रश्न पर मैं एक बात और भी गीता-प्रेमी सज्जनों के विचारार्थ उपस्थित करता हूं, वह यह है कि-

अगर ये ७० श्लोक अन्यों की अपेक्षा प्राचीन न भी माने जायें और यही सिद्ध हो जाये कि जावा या बाली द्वीप वालों ने चुन-चुनकर जिन्हें सर्वोत्तम माना उन श्लोकों को सुरक्षित रक्खा हो, तो भी इन ७० का मान्य करना उचित ही है, क्योंकि जहां वे अन्यों से उत्तम माने जाकर चुन लिये गये, वहां खास बात विचारणीय यह है कि इतने श्लोकों में समस्त गीता का आशय आ जाता है और इन श्लोकों की परस्पर संगति बडे ही उत्तम प्रकार से लग जाती है, जिसे पाठक वहीं देखेंगे।

इसलिए मैं बाली द्वीप वाले ७० श्लोकों वाली गीता को मान्य करता हूं। ये अन्य श्लोकों से प्राचीन हैं तब तो माननीय हैं ही, पर ऐसा न हो तो भी ७०० में से चुने हुए होने के कारण भी श्रद्धा के पात्र हैं ।

-"**मंगलानन्दपुरी सन्यासी**"

चौथा अध्याय
मूल श्लोंकों की संख्या

बाली द्वीप से जो गीता आई है उसमें कई श्लोक आधे हैं, कई एक पाद मात्र हैं, इसलिए पाठकों के सूचनार्थ मैं यहां एक चक्र में उनकी संख्या नीचे दिये देता हूँ -

बाली द्वीप की गीता-श्लोक-सूची

अध्याय	पूरा श्लोक	३/४ श्लोक	१/२ श्लोक	१/४ श्लोक	विशेष
प्रथम	१	...	३	...	...
दूसरा	१४	...	१	...	...
तीसरा	३	...	...	...	...
चौथा	६	...	४	...	...
पांचवां	१	...	२	...	...
छठवां	५	...	१	...	...
सातवां	५	१	१	२	...
आठवां	३	...	...	...	...
नवां	३	...	१	...	...
दसवां	१	४	४	३	एक शब्द अधिक है
ग्यारहवां	७	...	...	४	...
तेरहवां	२	...	...	...	...
चौदहवां	५	...	...	...	...
अठारहवां	१	...	...	...	...
जोड़	५७	५	१७	९	

इस प्रकार ५७ पूरे श्लोक हैं, तीन पाद वाले ५, आधे १७ और एक पाद वाले ९ हैं। इन आधे चौथाई को पूरे श्लोकों में लेखा लगाने से साढ़े इकहत्तर श्लोक होते हैं।

मैंने आधे चौथाई श्लोकों को पूरे के साथ लगा दिया है, जिससे संख्या ७० की ही ठीक लग जाती है, अतः इसका "सत्तर श्लोकी गीता" नाम रक्खा जाना सार्थक और प्रत्येक दृष्टि से उचित है। ♦

पांचवाँ अध्याय
७० श्लोकी गीता की विषयानुक्रमणिका

इन श्लोकों में क्या-क्या विषय आ गये हैं? यह बतलाने के लिए मैं यहां इसकी एक सूची बनाये देता हूं-

(१)-प्रथम दो श्लोकों में पहले अध्याय के ४७ श्लोकों का संक्षिप्त तात्पर्य आ जाता है।

(२)-तीसरे, चौथे श्लोकों को एक साथ पढ़ने से ज्ञात होता है कि वर्तमान गीता के दूसरे अध्याय के तीसरे से १०वें श्लोक तक में जो अर्जुन का वाक्य है वह अनावश्यक है, क्योंकि वे सब बातें तो प्रथम अध्याय में पहले ही आ चुकी थी। तीसरे के साथ ११ वें का सिलसिला बड़ी उत्तमता के साथ मिल जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी है परन्तु मैं विस्तार-भय से उनका उल्लेख नहीं कर सकता।

(३)-चौथे से आठवें तक जीवात्मा के अजर, अमर, अविनाशी होने का ज्ञान बतलाया गया है जो सांख्यदर्शन का सारांश है। वर्तमान गीता के अध्याय दो में श्लोक ११ से ३० तक में इसी का विस्तार है।

(४)-११ वें श्लोक में निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है ।

(५) १२ वें से १६ वें तक **"योग"** का उपदेश है। वर्तमान गीता

के दूसरे अध्याय में श्लोक ३८ से ७२ तक में इसी का विस्तार रूप है।

(६)-१७ से १९ वें तक कर्मकाण्ड का उपदेश है जो वर्तमान गीता के तीसरे अध्याय के ४३ श्लोकों का सारांश है।

(७) २०-२२ तक पुनर्जन्म (कर्म के फल निमित्त आवागमन आवश्यक हैं) कहा गया।

(८)-२३ वें से २६ वें श्लोक तक ज्ञान-काण्ड का उपदेश है (जो वर्तमान गीता के चौथे, पांचवें अध्यायों का सारांश है)।

(९)-२७ वें में कर्मकाण्ड की महिमा है।

(१०)-२८ वें से ३२ वें तक योग (भक्ति) का महत्व दर्शाया है।

(११)-३३ वें में उस योग (जीवात्मा के परमात्मा से मिल जाने के उद्योग) का फल बतलाया है।

(१२)-३४ वें से ३८वें तक परमात्मा की सर्वव्यापकता दर्शायी है।

(१३)-३९ वें से ४२ वें तक भक्तों के कर्त्तव्य आदि बतलाये हैं।

(१४)-४३ वें में भगवान् की भक्ति कैसे करें? यह बतलाया है।

(१५)-४४, ४५ वें में भक्त-भगवान का दर्शन किस रूप में करे? यह बतलाया है।

(१६)-४६ वें में भगवान् का दर्शन पाने का सुगम उपाय (निष्काम कर्म) बतलाया है। (इसको श्लोक संख्या ११ से मिलाकर पढ़िये।

(१७)-४७ वें से ५४ वें तक परमात्मा की विभूतियों का वर्णन है। इससे अभिप्राय यह है कि मुमुक्षु प्रभु परमात्मा को सर्वान्तर्यामी रूप में सर्वत्र रमा हुआ देखने का अभ्यास करे, इसी का विस्तार वर्तमान गीता का दसवां अध्याय है।

(१८)-५५ वें में परमात्मा के विश्व-रूप का वर्णन है।

(१९)-५६ वें में यह कहा है कि मनुष्य अपनी इन्हीं आंखों से परमात्मा के रूप का दर्शन नहीं कर सकता।

(२०)-५७ वें में परमात्मा का विश्वरूप-दर्शन है।

(२१)-५८ वें में अर्जुन की ओर से स्तुति मौजूद है।

(२२)-५९ और ६० वें में अर्जुन का विश्व-रूप परमात्मा को नमस्कार।

(२३)-६१ और ६२ वें में परमात्मा का दर्शन कौन कर सकता है?

(२४)-६३ और ६४ वें में परमात्मा का सर्वव्यापक होना दृष्टान्तों से समझाया गया।

(२५)-६५ व ६६ वें में सत्, रज, तम् का वर्णन।

(२६)- ६७ और ६८ वें में उक्त तीनों गुणों को पार कर लेने अर्थात् **"गुणातीत"** बन जाने का उपाय दर्शाया है।

(२७)- ६९ वें में गुणातीत बन जाने का फल बतलाया है।

(२८)-७० वें में गुणातीत बना हुआ महात्मा फिर क्या करे ? वह परमात्मा के शरणागत हो जाये, यह बतलाया गया है।

-"मंगलानन्दपुरी सन्यासी"

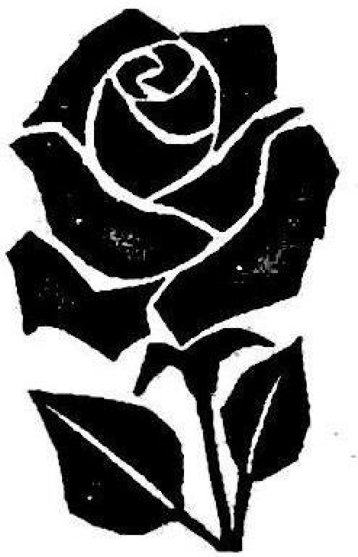

छठवाँ अध्याय
इस मूल गीता की अपूर्वता

ऊपर सूची द्वारा पाठकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि भगवद्गीता जिन उपदेशों के लिए प्रख्यात है वे सभी प्राय: संक्षेप रूप से इन ७० श्लोकों में आ गये हैं।

आरम्भ में शरीर और जीवात्मा का भेद बतलाकर परमात्मा का वर्णन किया गया है। फिर कर्म, उपासना (भक्ति), ज्ञान (जो वेदों के तीन विषय कहलाते हैं) का वर्णन आया है।

कर्म और उपासना दोनों का साथ कर देने का उपाय **"निष्काम कर्म"** है, वह भी आ गया है। उपासना का एक अंग **"योग"** (समाधि) है, उसका भी विवरण दिया गया है और अन्त में सर्वोच्च दर्जे वाले **"गुणातीत"** का भी वर्णन आ गया है।

इस प्रकार भगवद्गीता के ७०० श्लोकों में जो कुछ है, वह सब* ही बीज रूप से इन ७० श्लोकों में आ गया है। हां ! कोई बात संक्षेप में और कोई विस्तार में है।

हम देखते हैं कि जिस बात को सबसे ज्यादा विस्तार के साथ और जोरदार शब्दों में कहा गया है वह परमात्मा के सर्वव्यापक होने का सिद्धान्त है। ७० में से २५ श्लोक इसी विषय को समझाने के लिए आये हैं।

वर्तमान गीता के दो अध्याय (१० वां और ११ वां)पूरे तथा अन्यों

---

* परन्तु त्रैतवाद- ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों के अनादि होने का सिद्धान्त जो वर्तमान गीता के १३ वें अध्याय के १९ से २२ वें श्लोकों में तथा १५ वें अध्याय के १६ व १७ वें श्लोकों में वर्णन किया गया है, जो इस **सत्तर श्लोकी गीता** में नहीं है, कोई इसका प्रसंग भी नहीं था। **"सम्पादक"**

के भी कुछ भाग इसी सिद्धान्त के अर्पण किये गये हैं।

इसी से यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है, कि गीता (उपनिषदों और वेदों के आधार पर) मनुष्यों को यह दर्शाती है कि तुम्हारा इष्टदेव तुमसे दूर नहीं है, वह घट-घट व्यापक सर्वान्तर्यामी है, उसको जहां ढूंढोगे वहीं पा जाओगे।

वर्तमान गीता के दसवें अध्याय में जो विभूतियों का वर्णन आया है, उसका अभिप्राय केवल यही है कि जो ईश्वर-भक्त अभी प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म का दर्शन नहीं कर सकता, वह संसार की खास-खास चीजों ही में ब्रह्म का दर्शन करे।

जैसे कहा गया है कि- **"वृक्षों में मैं पीपल हूँ"** इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम तो उपासक को उचित है कि प्रत्येक-प्रत्येक वृक्ष में ब्रह्म परमात्मा को व्यापक देखने का अभ्यासी बने, लेकिन जो अभी इतना उन्नतात्मा न हो कि सब वृक्षों में परमात्मा को देख सके, वह कम से कम यही भावना धारण करे कि पीपल के पेड़ में मेरा मालिक प्रभु विराजमान हो रहा है, इत्यादि।

यह विषय हमारी इस गीता में है; जो श्लोक-संख्या ४७ से ५४ तक में आया है।

पाठकों को ज्ञात हो कि वर्तमान गीता के ११ वें अध्याय में जो विश्वरूपदर्शन आया है, इससे अनेक लोग भ्रम में पड़ गये हैं; परन्तु वस्तुतः उसका अभिप्राय और कुछ नहीं है सिवाय इसके कि परमात्मा को सर्वत्र व्यापक देखा जाये।

भगवान् श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को दसवें अध्याय द्वारा खास-खास चीजों में परमात्मा को देखने का ज्ञान देकर ग्यारहवें अध्याय में यह समझाया कि अब एक पग और आगे बढ़ाओ तो देखोगे कि ब्रह्म परमात्मा साक्षात् सामने विराजमान हैं।

एक बात जो इस ७० श्लोकी गीता पर मनन करने से मैं ज्ञात कर

पाया हूँ, वह पाठकों को सुनाता हूँ देखिये-

वर्तमान गीता में ११ वें अध्याय के १५ वें से ३१ वें श्लोक तक अर्जुन से लम्बी स्तुति कराई गई है, परन्तु इस प्राचीन गीता में केवल दो श्लोक ५८ और ५९ ही स्तुति के रूप में आये हैं और इनमें परमात्मा के उस रूप का संकेत है जो रणभूमि में हो सकता है, या जो एक शूरवीर योद्धा के मन में युद्ध-भूमि में जाकर डट जाने पर आना स्वभावत: सम्भव है।

अवश्य ही सूक्ष्म विचार करने वाले गीता-प्रेमी सज्जनों को यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान गीता में इस स्थल पर जो इन १५ से ३१ अर्थात् सत्रह श्लोकों में स्तुति वर्णन की गई है उनमें से केवल ये ही दो श्लोक प्रसंगानुकूल और प्राचीन हो सकते हैं।

अन्य ११ से १५ वाले श्लोकों में जो **"ब्रह्मा, शिव, ऋषि,सर्प आदिकों को आपके शरीर में देखता हूँ"** इत्यादि बातें कही गई हैं वह अप्रासंगिक होने के सिवाय अवैदिक भी हैं। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इत्यादि देवताओं के ऐसे रूपों (कि विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न होकर उससे ब्रह्मा उपजे- **"कमलासनस्थ"**) का वर्णन तो पुराणों में ही आया है।

प्राचीन ग्रंथों (वेदों-उपनिषदों आदि) में ऐसी बातों का वर्णन लेश मात्र भी नहीं है, अत: यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान गीता के ११वें अध्याय का यह १५वां (तथा ऐसे अन्य) श्लोक पुराणों के बन चुकने के पश्चात् भगवद्गीता में मिलाये गये होंगे।

हमारी इस ७० श्लोकी गीता में कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती, जो आधुनिक काल की गढ़न्त हो और प्राचीन आर्ष-ग्रन्थों से विपरीत हो, इसलिए निस्सन्देह हमें इन ७० श्लोकों को अन्यों की अपेक्षा प्राचीन मानने पर विवश होना पड़ता है।

अन्त में एक बात और कथन करके मैं इस "**भूमिका**" को समाप्त करता हूं-

गीता के अन्तिम श्लोक "**सर्वधर्मान् परित्यज्य.........**" पर विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि यह कैसा उपदेश है ? कि-"**सारे धर्मों को छोड़ दो**" इस पर शंका होती है कि धर्म-कर्म को छोड़कर क्या मनुष्य अधर्मी बन जाये?

इस शंका का उत्तर यद्यपि विद्वानों ने अनेक प्रकार से दिया है, परन्तु पूर्णतया समाधान नहीं हुआ। हर्ष की बात है कि हमारी इस ७० श्लोकी गीता ने इस समस्या को बहुत उत्तमतापूर्वक हल कर दिया है। कैसे? इसको जानने के लिए पाठक ७० वें श्लोक की टिप्पणी को पढ़ लें।

ऐसी अनेक लाभदायक बातें हैं जो इस प्राचीन गीता को ध्यान से पढ़ने और मनन करने से ज्ञात होंगी और आशा है कि गीता-प्रेमी सज्जनगण उनसे यथेष्ट लाभ प्राप्त करते हुए मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। इत्योम् शान्तिः। शुभं भवतु जगताम्!

सर्वहितेच्छु -

१३८ - **अतरसूया "प्रयाग"** **"मंगलानन्द पुरी सन्यासी"**

बैसाख, कृष्ण १२, संवत् १९८२ विक्रमी

(२० अप्रैल सन् १९२५ई०)

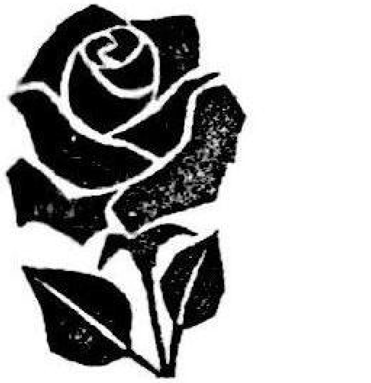

प्राचीन श्रीमद्भगवद्गीता
(७०० के स्थान में ७० श्लोक)

यह ७० श्लोकी गीता **"दृष्टवेमं स्वजनं ...."** वाले श्लोक से आरम्भ होती है जिसका पहला श्लोक निम्न प्रकार है-

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजन माहवे।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च॥१॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १ श्लोक २८, ३१, ३२)

अर्थ-(अर्जुन ने कहा) हे कृष्ण ! अपने निज लोगों को युद्ध की इच्छा से यहाँ पर एकत्र हुए देखकर (मैं दुःखी हो रहा हूं)। (क्योंकि) इन स्वजनों को मार कर मैं अपना कल्याण नहीं देखता। हे कृष्ण ! इस प्रकार की विजय, राज्य और सुख की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है।

यदि माम प्रतीकारमशस्त्रं शस्त्र-पाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥२॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १ श्लोक ४६)

अर्थ- बल्कि अगर ऐसा हो कि मैं स्वयं न तो बदला लेने वाला बनूँ और न शास्त्रों को हाथ में धारण करूँ, इस दशा में मुझको धृतराष्ट्र की सन्तानें (दुर्योधनादि) मार भी डालें, तो अवश्य मेरा कल्याण हो जाये।

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्क्त्वोत्तिष्ठ परं तप ॥३॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३)

संगति-अर्जुन की उक्त बातें सुनकर श्रीकृष्ण जी महाराज ने उत्तर दिया-

अर्थ- हे पार्थ ! तू ऐसा नामर्द मत बन, तुझे यह शोभा नहीं देता । अरे शत्रुओं को ताप देने वाले ! अन्तःकरण की इस क्षुद्र? दुर्बलता को छोड़कर (युद्ध के लिए) खड़ा हो जा ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।४।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ११)

संगति- वह अन्तःकरण की दुर्बलता क्या है? यह बतलाते हैं-

अर्थ- और हे अर्जुन ! जिनके बारे में शोक नहीं करना चाहिए, तू उन्हीं के लिए शोक कर रहा है। तू तो ज्ञानियों की जैसी बातें कर रहा है। (पर ज्ञानी नहीं है, क्योंकि) वे पण्डित लोग तो किसी के प्राण जाने, न जाने का शोक नहीं किया करते।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।५।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १३)

संगति- क्यों नहीं करते? यह बतलाते हैं।

अर्थ-जिस तरह दूसरी देह[१] से इस देह में लड़कपन, जवानी,

---

१. आवागमन पर यहाँ दृष्टान्त दिया गया है। जैसे लड़के का शरीर जवान हो जाने पर यद्यपि शरीर का आकार बदल जाता है, पर जीवात्मा वही बना रहता है, इसी प्रकार दूसरा जन्म लेने पर भी यद्यपि शरीर बदल जाता है पर जीवात्मा वही बना रहता है।

इस पर श्रुति यह है-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्।।७।।

(कठ उपनिषद् ५- ७)

बुढ़ापा हुआ करते हैं (शरीर की दशा बदलती रहती है) इसी प्रकार इस देहवाला (जीवात्मा) इससे निकलने पर आगे दूसरा देह पा जाता है (ऐसा समझ कर) वे धीर लोग किसी के मरने-जीने का शोक नहीं किया करते।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः ॥६॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १६)

संगति- और अगर यह शंका हो कि संसार में मरना यानी नाश हो जाना तो देखा ही जाता है, फिर शोक क्यों न किया जाये? तो उत्तर यह है ।

अर्थ- असत् (नेस्ती Non-Existence) से भाव (हस्ती Existence या उत्पत्ति) नहीं हुआ करता, और सत् का अभाव (हस्ती से नेस्ती) नहीं हो सकता। इन दोनों के अन्तर (असलियत) को तत्वदर्शी फिलासफर अर्थात दार्शनिक लोगों ने देख लिया है[1]।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥७॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १८)

संगति-ऊपरी श्लोक में आये **"सत्-असत्"** से यहाँ क्या तात्पर्य

---

१. आशय यह है कि जीवात्मा "सत्" पदार्थ है और सत् (हस्ती) वस्तु कभी असत् (अभाव) या नेस्ती नहीं हुआ करती, इसी प्रकार जीवात्मा का अभाव (नेस्ती) अर्थात नाश नहीं हो सकता। शरीर नष्ट हो जाने पर भी वह बना रहता है, इसलिए शरीर से जीव के निकल जाने का शोक करना "मूर्खों" का काम है, ज्ञानियों का नहीं।

इस पर यह श्रुति है-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ।

(ऋग्वेद)

है यह बतलाते हैं-

अर्थ- ये देह (असत होने से) अन्त वाले हैं और शरीर के मालिक (जीवात्माएं) सदा (सत् होने से) नित्य (अन्त न होने वाले) कहे गये हैं। हे भारत! वह (जीवात्मा) तो अविनाशी और अप्रमेय (अचिन्त्य) है, इसलिए (तू उसके मरने या मारे जाने की फिक्र छोड़कर) युद्ध में डट जा[१]।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥८॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १९)

अर्थ- (क्योंकि) जो कोई इस (जीवात्मा) को मारने वाला मानता है और जो मारा जाने वाला मानता है, वे दोनों असिलयत को नहीं जानते (कारण यह कि) वह न तो मरता है और न मारा जा सकता है[२]।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥९॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३१)

संगति-अच्छा अगर जीवात्मा के अमर होने की बात पर ध्यान न

---

१. इस पर यह श्रुति है-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥१८॥

(कठोपनिषद २-१८)

२. क्योंकि नष्ट होना शरीर का धर्म है, परन्तु जीवात्मा अमर है।
इस पर यह श्रुति है-

हन्ता चेन् मन्यते हन्तुं हतश्चेन् मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायंहन्ति न हन्यते॥१९॥

(कठोपनिषद २- १९)

भी दिया जाये, तो भी अर्जुन को युद्ध से इन्कारी न बनना चाहिए था। क्यों? सुनो:-

अर्थ- अपने धर्म का ख्याल करके भी तुझे (युद्ध से) नहीं डिगना चाहिये, (क्योंकि) क्षत्रिय के लिए तो युद्ध रूपी धर्म[1] से बढ़कर श्रेय (कल्याणकारी) और दूसरा कोई कर्म ही नहीं है।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥१०॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३७)

संगति-वह कल्याणकारी कैसे है? सुनो-

अर्थ -अगर तू युद्ध में मारा जायेगा तो स्वर्ग को पायेगा और अगर जीत लेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा अर्थात दोनों हाथ लड्डू हैं इसलिए हे कौन्तेय ! उठो, युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ११॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४७)

संगति-अगर अर्जुन यह कहे कि मैं युद्ध में मार-काट रूपी निर्दयता का अनुचित व्यवहार क्यों करूँ? तो भगवान उत्तर देते हैं-

अर्थ- तेरा अधिकार कर्म करने ही में है। किन्तु फल भोगने में नहीं है। कर्मों के फलों का कारण मत बनो (अमुक फल मिले यह हेतु मन में रख कर काम करने वाले मत बनो) और तेरा संग अकर्म में न हो अर्थात कर्म करना छोड़ भी मत देना[2]।

---

१. इस पर मनुस्मृति का प्रमाण देखो- अध्याय ७ श्लोक ९४ तथा ९५,

२. यहां निष्काम कर्म का उपदेश है कि काम तो करो परन्तु उसके फल की इच्छा मत रक्खो। कर्मों को केवल अपना कर्त्तव्य मान कर करो ।

क्रमशः........अगले पेज पर

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥१२॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४८ वे ५३)

संगति- उक्त प्रकार के निष्काम कर्म करने में सुगमता कैसे हो? सुनो-

अर्थ- सफलता- असफलता में समान रहना (सफलता होने पर खुशी के मारे फूल कर कुप्पा न बन जाना और असफलता पर दुःख से व्याकुल न होना) चाहिये। ऐसी समता ही "योग" है[१.] ।

पिछले पेज का शेष............

इस पर ये श्रुतियां हैं-

ईशा वास्यमिदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजी विषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥२॥

(यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १ व २)

अर्थात- श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध करना तेरा कर्त्तव्य कर्म है, इसीलिए उसे करना ही चाहिए।

१. "योग" शब्द का अर्थ है मिलना और भावार्थ में जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलाप होने को "योग" कहते हैं।

परमात्मा के साथ योग कब होगा? यहाँ श्री कृष्ण जी बतलाते हैं कि-

जब हम सफलता-असफलता को बराबर समझने लग जायेंगे तभी योगी अर्थात् ईश्वर-भक्त बन सकेंगे।

(नाना प्रकार के) वेद-वाक्यों[१] से दुविधा में पड़ी हुई तेरी बुद्धि जब समाधि वृत्ति[२] में स्थिर और निश्चल हो जायेगी, तब तू योग को प्राप्त कर लेगा।

प्रजहाति[३] यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥१३॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५५)

संगति-अब समाधि में अचल होने वाले का लक्षण बतलाते हैं-

अर्थ- हे पार्थ ! जब वह (योगी मन में आने वाली) सारी कामनाओं को छोड़ देता है और आत्मा[४] से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है,

---

१. एक वेद-वाक्य कहता है कि-

"यज्ञ करोगे तो स्वर्ग मिलेगा"

दूसरा वेद-वाक्य कहता है कि-

"दान दोगे तो अगले जन्म में धनाढ़य बनोगे।"

तीसरा वेद वाक्य कहता है कि -

"विद्या पढ़ाओगे तो स्वयं विद्वान बनोगे।"

इत्यादि २ वेद वाक्यों से मनुष्य का मन स्वभावतः उन-उन कर्मों पर ललचाता है। परन्तु जो मनुष्य ब्रह्म को पाना अर्थात् मुक्ति में जाना चाहे तो वह उक्त कर्मों में न फंसे किन्तु मन को सब ओर से हटाकर समाधि में लगा देवे तभी सफलता प्राप्त होगी।

२. जिसका रूप ध्यान किया जाये उसके स्वरूप में कायम और अपने रूप को भूल जाना, "समाधि" कहलाता है।

३. एक पाठ "यदा संहरते" भी दिया हुआ है।

४. आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहना यह है कि जीवात्मा अपने प्रभु परमात्मा ही के चिन्तन में लीन रहे। "आत्मा" शब्द वेदान्त ग्रन्थों में जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों के लिए आता है।

इस पर यह श्रुति है-

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वन्भवते नातिवादी।
आत्म क्रीड आत्म रतिः क्रियावानेषु ब्रह्म विदां वरिष्ठः ॥४॥

(मुण्डक उपनिषद ३-४)

तब वह "स्थित-प्रज्ञ" अर्थात् अचल बुद्धिवाला कहलाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।१४।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५६)

अर्थ-जिसके मन को दुःख में खेद नहीं होता और न सुख में आसक्ति होती है, जिसने प्रीति, भय और क्रोध को छोड़ दिया है, वह मुनि स्थित-धीः अचल बुद्धि वाला कहलाता है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।१५।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५९)

संगति- प्रश्न- यह जो ऊपर कहा है कि सुख में आसक्त न होना अचल-बुद्धि वाले का लक्षण है, तो यतः गरीब निर्धन लोग भी सुखों से दूर रहा करते हैं, इसलिये क्या उनको भी अचल बुद्धिवाला मान लिया जाये? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि-

अर्थ-निराहारी मनुष्य (जिसे खान, पान या अन्य सुख सामग्री नहीं मिलती) के विषय-भोग तो छूट जाते हैं, परन्तु उसकी वासना नहीं छूटती (मन में उन अप्राप्त विषयों का मनन होता रहता है।) अलबत्ता परब्रह्म परमात्मा को देख[1] लेने पर वासनाएं भी निवृत्त हो जाती हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।१६।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ६९)

संगति-ऐसे परमात्मा का दर्शन कर लेने वालों की दशा किस प्रकार की होती है? सुनो-

---

१. देखने से तात्पर्य ज्ञान दृष्टि से देखना अर्थात् साक्षात्कार कर लेना अभीष्ट है।

अर्थ-सर्वसाधारण लोगों की जो रात होती है उसमें वे संयमी (परमात्मा के दर्शन करने वाले योगी) लोग जागते हैं और जिस अवस्था में वे दुनियादार लोग जागते रहते हैं वह उन योगियों की रात्रि है[१]।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥१७॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ११)

संगति-जो लोग ऊपरी श्लोकों के अनुसार अभी योगी नहीं बन सकते, वे कर्मकाण्डी ही बने रहें, यह उपेदश यहां करते हैं-

अर्थ-देवताओं को (अपने यज्ञ कर्मों से) प्रसन्न करोगे तो वे खुश होकर तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार एक-दूसरे को प्रसन्न करते हुए परम कल्याण को प्राप्त कर लोगे[२]।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥१८॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक १३)

---

१. यहां रात-दिन आलंकारिक भाषा में आये हैं। अभिप्राय यह है कि योगियों की दशा सांसारिक लोगों से सर्वथा उल्टी रहती है। ये दुनियादार लोग तो विषय भोगों में लिप्त रहना ही मात्र परम उद्देश्य मान बैठे हैं, परन्तु वे ब्रह्मज्ञानी इन दुनियावी सुखों पर लात मार कर आगे बढ़ रहे हैं; अतः मानो सांसारिक भोगों में फंसना उनकी रात्रि है और परमार्थ चिन्तन ही उनका दिन है।

अर्जुन से श्री कृष्ण जी कहते हैं कि तू उधर हो या इधर। कहीं दोनों से भ्रष्ट न हो जिसके कारण ऐसा न हो कि "धोबी का कुत्ता घर का रहे ना घाट का।" अतः तू योगी नहीं बन सकता, इसलिए कर्मकाण्डी (दुनियादार) ही बना रह अर्थात् युद्ध से पृथक् मत हो।

२. अर्जुन को यह संकेत करते हैं कि युद्धरूपी क्षात्र-धर्म (कर्म) द्वारा रुद्र भगवान को प्रसन्न करना ही उस समय परम कर्त्तव्य था।

संगति- यज्ञ[१] ही से देवता प्रसन्न हुआ करते हैं, इसलिये यज्ञ की महिमा सुनो-

अर्थ-यज्ञ से बचे हुए पदार्थों को खाने वाला सन्त सब पापों से छूट जाता है। परन्तु जो लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं वे मानों अपने पापों को खा रहे हैं[२]।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥१९॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ३५)

संगति- यज्ञों का अनुष्ठान धर्मात्मा लोग ही कर सकते हैं, इसलिए धर्म का विवरण सुनो-

अर्थ-अपना धर्म खराब, प्रतीत होता हो, तो भी दूसरे के धर्म को बहुत उत्तम प्रकार पालन करने से भी वह श्रेष्ठ ही है। अपने धर्म में मरना भला है, किन्तु दूसरे का धर्म अपने को

---

१. **"यज्ञो वै विष्णुः......................................"**

(शतपथ)

२. **मनस्मृति तथा शतपथ ब्राह्मण में पाच महायज्ञ प्रतिदिन करने का विधान है-**

१. **संध्या करके,**

२. **हवन करके,**

३. **बलिवैश्व द्वारा कुत्ते आदि का भाग देकर**

४. **पितरों को खिलाकर,**

५. **अतिथि अभ्यागतों को भोजन करा लेने के पश्चात् गृहस्थी स्वयं भोजन करे, ऐसा न करने वाले पापी होंगे।**

श्री कृष्ण जी महाराज अर्जुन को आदेश देते हैं कि युद्ध करके राज्य प्राप्त कर लेवे तो खूब दान, पुण्य, यज्ञ, हवनादि कर सकेगा।

भयदायक ही है[1]।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥२०॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ५)

संगति- पूर्व में जो धर्म का महत्व कहा है, उस पर कोई यह शंका करे कि धर्म करने में कष्ट उठाना वृथा है क्योंकि कई धर्मात्मा लोग दुःखी देखे जाते हैं? तो इसके उत्तर में यहाँ **"आवागमन"** का उपदेश करते हैं कि वे दुःखी तो पूर्वजन्मों के कर्मफलों से होते हैं परन्तु अब जो धर्म करते हैं उसके फल में अगले जन्मों में सुख पायेंगे।

अर्थ- हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुतेरे जन्म बीत चुके हैं, किन्तु मैं उन सब (जन्मों के हालात) को जानता[2] हूं परन्तु हे परम् तप ! तुम नहीं जानते।

---

१. "यहां वर्णाश्रम धर्म से अभिप्राय है। ब्राह्मण का धर्म पढ़ना-पढ़ाना आदि है तथा क्षत्रिय का दुष्टों को मार कर धर्मात्माओं की रक्षा करना। यहां अर्जुन को कहा गया है कि-

तू क्षत्रिय है, युद्ध करना तेरा धर्म है, उसे छोड़ कर जो तू भागा जाता है यह तेरी भारी भूल है।

अरे क्षात्र धर्म कितना ही खराब क्यों न हो, पर वह तेरे लिये तो अच्छा ही है।"

कई लोग "धर्म" से मत-मतान्तरों तथा मजहबों का तात्पर्य लेते हैं पर वह आशय यहां नहीं है "कृष्णार्जुन संवाद" के समय तक संसार भर में केवल एक वैदिक धर्म ही था, ये "मजहब" तो बहुत पीछे चले हैं।

२. श्री कृष्ण जी अपने पूर्व जन्मों को क्यों कर जानते थे? इसका उत्तर यह है कि वे योगी थे और योगबल से सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥२१॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ७ व ८)

संगति-अब यह बतलाते हैं कि किन दशाओं में श्रीकृष्ण जी या ऐसे महान योगी लोग संसार में आकर जन्म लेते हैं?

अर्थ- हे भारत ! जब-जब धर्म की (संसार में) कमी और अधर्म की ज्यादती हो जाती है, तब-तब मैं साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने के लिए अपने को सृजता हूँ[१]।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा॥२२॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ९ व १४)

संगति-योगी लोगों के जन्म और कर्म कैसे होते हैं? यह बात श्रीकृष्ण जी अपने निज दृष्टान्त से प्रकट करते हैं-

अर्थ- मेरे (या मेरे जैसे योगियों का) जन्म और कर्म दिव्य (अद्भुत प्रकार का) है (क्योंकि) न तो कर्म[२] मुझमें (योगी

---

१. "अपने को सृजता हूँ" यह वाक्य श्री कृष्ण जी का है; जिसका अभिप्राय यह होता है कि श्रीकृष्ण जी महाराज अपने योग बल से जब उचित समझते हैं तब मानुषी शरीर धारण कर लेते हैं।

२. अवतारवादी महाशयगण इसी श्लोक का प्रमाण अपनी पुष्टि में लगाते हैं; परन्तु यहाँ परमेश्वर के शरीरधारी बनने की कोई बात नहीं कही गई।
इस पर यह श्रुति है-
"आप्त कामस्य स्पृहा" अर्थात् जो आत्मज्ञानी हैं उनको कुछ भी किसी काम के फल से प्रयोजन नहीं है।

होने से) लिपटते हैं, और न मैं (परमज्ञानी होने से) उनमें फंसता हूं। इस बात को जो कोई ठीक-ठीक जान लेता है वह देह त्यागने पर पुनर्जन्म को नहीं पाता, किन्तु हे अर्जुन! वह मुझ (परमात्मा) को पा जाता है[१]।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥२३॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १८)

१. "मुझ" से अभिप्राय "ब्रह्म परमात्मा" से है। श्रीकृष्ण जी ने परमात्मा के स्थान में अपने को क्योंकर कहा? इसका उत्तर यह है कि श्रीकृष्ण जी परम् योगी थे, इस कारण वे परब्रह्म परमात्मा में इतने लवलीन थे कि अपने को उससे भिन्न नहीं देखते थे।

ऐसे पूर्ण योगी महात्मागण इसी प्रकार दीक्षा करते हैं, इसका प्राचीन प्रमाण भी मिलता हैं-

अर्थात् वामदेव ऋषि ने कहा था कि सूर्य में जो पुरुष प्रकाश दे रहा है वह मैं ही हूं -

बृहदारण्यक उपनिषद में आया है कि -

तद्धैतत् पश्यन्नृपिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुर्भव,
सूर्य्यश्चेति तदिदमप्येतर्हिय एवं वेदाह ब्रह्मास्मीति।

(बृहदारण्यक उपनिषद १-४- १०)

श्री लोकमान्य तिलक जी महाराज ने अपने "गीता-रहस्य" के नवे प्रकरण में पृष्ठ २३२ पर लिखा है कि:-

"व्यक्त अथवा अव्यक्त सगुण ब्रह्म की उपासना से ध्यान के द्वारा धीरे-धीरे बढ़ता हुआ उपासक अन्त में "अहं ब्रह्मास्मि" बृहदारण्यक उपनिषद १-४-१० अर्थात् "मैं ही उसका ध्यान भी नहीं जाता कि मैं किस स्थिति में हूं?

पाठकों को ज्ञात हो कि योगीराज श्री कृष्ण जी की ऐसी ही स्थिति थी जिसका दिग्दर्शन तिलक महाराज के ऊपरी वाक्य में कराया गया है।

अतः जहाँ-जहाँ "परमेश्वर की उपासना करो" कहना उचित था वहाँ-वहाँ कृष्ण जी ने "मेरी उपासना करो" ऐसा कहा है। इसका अभिप्राय यही है कि-"मैं जिस ब्रह्म परमात्मा का प्रतिनिधि हूं उसकी उपासना करो"।

संगति- ऐसा कर्म से निस्पृह कैसे बन सकता है? यह बात यहां बतलाते हैं।

अर्थ-कोई कर्म में अकर्म को और अकर्म में कर्म को देखता[१] है वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही योगी है, और कर्मों को (यथार्थतया) करने वाला भी वही है[२]?

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥२४॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक २२)

संगति - अब ऊपरी उपदेश पर अमल करने का साधन बतलाते हैं।

अर्थ- "यदृष्च्छा" (दैव से, अनायास ही) जो कुछ मिल जाये, उसी से सन्तुष्ट हो जाने वाला, "द्वन्द्व" (जाड़ा-गरमी, हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि) से मुक्त रहने वाला, और सफलता-असफलता को एक समान मानने वाला (ज्ञानी पुरुष)

---

१. इस पर श्रुति यह है-

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्॥१०॥

(कठोपनिषद २-१०)

२. **"अकर्म" का तात्पर्य ज्ञान है। कर्मकाण्डी और ज्ञानकाण्डी का** परस्पर भारी विरोध जारी था, श्री कृष्ण जी ने उसको बड़े उत्तम प्रकार से निवारण कर दिया है।

वे कर्म और ज्ञान का मेल कराते हैं- कर्म करने वाला अगर "निष्काम कर्मी" बन जाये तो कर्म उसे न फाँसेंगे और ज्ञानी अगर परोपकार निमित्त संसार के कार्यों को निस्पृह रूप से चलाता रहेगा तो उसके ज्ञान में कोई त्रुटि न होगी, यही आशय यहाँ कृष्ण जी का है।

कर्मों को करने पर भी (उन) के पाप-पुण्य में नहीं फंसता[१]।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥२५॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक २८)

संगति- उसी बात को और पुष्ट करते हैं

अर्थ- ऐसे (उस प्रकार से) यती लोग जो तीक्ष्ण व्रतों को धारण करते हैं (अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, जैसे) कोई द्रव्य-यज्ञ (हवन, यज्ञ, दान, पुण्य) करते हैं और तप-यज्ञ (संसार की भलाई के लिए अपने ऊपर कष्ट[२] उठाने का कार्य) करते हैं, और दूसरे कोई लोग स्वाध्याय या ज्ञान-यज्ञ[३] में लग जाते हैं[४]।

---

१. अर्जुन को यह सब सुनाने का अभिप्राय यह है कि वह ज्ञानी बनना चाहे या कर्मकाण्डी, हर हालत में उसको युद्ध करना ही चाहिए।

२. जैसे वर्तमान समय में स्वर्गवासी लोकमान्य पण्डित बालगंगाधर तिलक जी महाराज अन्यों की भलाई के लिए बार-बार जेल को चले गये।

३. ज्ञानयज्ञ कौन से हैं?

पढ़ना-पढ़ाना, धर्म चर्चा करना, सत्संग, कथा वार्ता, व्याख्यान आदि-आदि "ज्ञान-यज्ञ" में ही शामिल हैं।

एकान्त सेवन, ब्रह्मचिन्तन आदि ज्ञान रूपी महल की ऊँची अटारी हैं।

४. अर्जुन किस यज्ञ में प्रवृत्त हो? वह "तप यज्ञ" करे अर्थात् धर्मात्माओं के सिरताज युधिष्ठिर महाराज की रक्षा के लिए दुष्ट दुर्योधन आदि का वध करे?

ऐसा करने में अगर अपना गला भी कटाना पड़े तो निस्संदेह कटा देवे।

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया॥२६॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ व ३४)

संगति- उन व्रतों की समाप्ति कहाँ होती है सुनो-

अर्थ-हे पार्थ ! सब प्रकार के कर्मो (उक्त व्रतों) की समाप्ति ज्ञान में जाकर हो जाती है। उस ज्ञान को पाने के लिए ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करो और सेवा करके प्रसन्न कर लो तब प्रश्न[1] करो तो उस ज्ञान को पाओगे[2]।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥२७॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ५ श्लोक २)

संगति-अगर यह शंका हो कि कभी कर्म और कभी ज्ञान को बढ़ाकर[3] कहा है, फिर किसको श्रेष्ठ माना जाये? तो उत्तर यह है-

---

१. इस पर श्रुति यह है कि -

परीक्ष्य लोका कर्म चितान्ब्राह्मणो।
निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन॥
तद्विजानार्थ स गुरुमेव अभिगच्छेत् ।
समित् पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

(मुण्डकोपनिषद १-२-१२)

२. अर्जुन ने परमज्ञानी श्री कृष्ण जी को प्रणाम करके श्रद्धापूर्वक प्रश्न किया था, अतः गीता रूपी इस "ज्ञानामृत" का उपदेश प्राप्त किया। श्री कृष्ण जी का अर्जुन को यहां यह उपदेश है कि वह क्षात्र धर्म का पालन करता हुआ पृथ्वी से भार रूपी दुष्ट पापियों को उच्छिन्न कर देवे, तो वेदपाठी ब्राह्मण, तत्वदर्शी ज्ञानी तथा धर्मात्मा तपस्वी लोग अपने-अपने कर्मों में लग जायें बस ! फिर संसार में सर्वत्र "ज्ञान यज्ञ" ही होने लग जाये।

३. कर्म (यज्ञ) का महत्व ऊपर १६ व १७वें श्लोक में कहा है और ज्ञान का महत्व २२ तथा २५ वें में आया है।

अर्थ- सन्यास[१] और कर्म ये दोनों ही कल्याण देने वाले हैं (परन्तु) उन दोनों में कर्म संन्यास से बढ़कर है[२]।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥२८।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ५ श्लोक ६, ७)

संगति- दोनों कैसे कल्याणदायक होंगे? यह बतलाते हैं।

अर्थ- (ज्ञान) योग से युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है (क्योंकि) उस (मुनि) की दृष्टि ऐसी हो जाती है कि वह सब भूतों (प्राणियों) के आत्मा में उस "भूतात्मा" (सब वस्तुओं में व्यापक परमात्मा) को देखता रहता है अतः वह (ज्ञानी) कर्म करने पर भी उसमें नहीं फंसता[३]।

---

१. संन्यास का आशय वेदान्त ग्रन्थों में "ब्रह्मज्ञान" का है। "ज्ञानी" वह माना जाता है जिसके मन में हर वक्त ब्रह्म ही का चिन्तन होता रहे।

२. यद्यपि वस्तुतः तो ज्ञान (कर्म संन्यास) ही श्रेष्ठ और अन्तिम साध्य है, परन्तु कर्मकाण्ड (कर्म योग) की बड़ाई यहाँ श्रद्धा उपजाने के लिए करते हैं क्योंकि साधारण वर्ग के लोगों को तो प्रथम कर्म में ही प्रवृत होना चाहिये, नहीं तो वे भ्रष्ट हो जायेंगे। अतः श्री कृष्ण जी उन साधारण लोगों को सुझाते हैं कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम कर्म को ज्ञान से बढ़कर मान लो तो उसमें तुम्हारी श्रद्धा होगी। फिर कर्म करते-करते अपने आप ही तुम लोग समय पर ज्ञान के अधिकारी बन जाओगे इत्यादि ।

३. कर्म में फँसना अर्थात् लिप्त होना यह है कि पाप-पुण्य करने पर उनके फल में दुःख-सुख भोगना। ज्ञानी पाप-पुण्य करने पर भी सुख-दुःख में नहीं फँसता, क्योंकि जो वस्तुतः ज्ञानी होगा उसका मन ब्रह्म के ध्यान में इतना लवलीन रहता होगा कि उसको सुख -दुःखों का भान तक न होगा। इस पर श्रुति यह है कि -

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विद्धाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतो नेतरेषाम्॥

(कठोपनिषद ५- १३)

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं। नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥२९॥

(वर्तमान भगवद्‌गीता अध्याय ६ श्लोक ५)

संगति- ऐसा उत्तम जो ज्ञान है, उसकी प्राप्ति का अब साधन बतलाते हैं।

अर्थ - आत्मा से आत्मा को ऊँचा उठावे, किन्तु आत्मा को नीचे न गिरने देवे (क्योंकि) आत्मा ही अपना मित्र है और वह स्वयं ही अपना शत्रु है[१]।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥३०॥

(वर्तमान भगवद्‌गीता अध्याय ६ श्लोक १०)

संगति-आत्मा को ऊँचे दरजे पर उठाने में सफलता कैसे प्राप्त हो यह बतलाते हैं-

अर्थ- योगी (परमात्मा से मिलने की इच्छा वाला ज्ञानी पुरुष) अकेला रहता हुआ, गुप्त स्थान में निवास करता हुआ, विषयों से बचता हुआ, परिग्रह (दूसरों से सहायता) न लेता हआ, आत्मा (परब्रह्म परमात्मा) के साथ जुट जावे (मेल-मिलाप कर लेवे)।

---

१. प्रत्येक मनुष्य अपने को अच्छे कामों में लगाकर अपने आत्मा को उन्नत बना सकता है। पाप कर्मों से आत्मा नीचे गिरेगी, अतः उससे बचा रहे।

अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू अपने आत्मा को उन्नत बनाना चाहता है तो युद्ध से मुंह मत मोड़ क्योंकि क्षत्रिय की आत्मा ऐसा करने से गिर जाती है। तू अपने आत्मा को गिरने न दे किन्तु ऊँचा उठा।

समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।
यथा दीपो निवातस्थो नेगंते सोपमा स्मृता॥३१॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक १३ व १९)

संगति-परमात्मा के साथ मिलाप होने का और भी उपाय बतलाते है-

अर्थ-(वह योगी ऐसा आसन लगाकर योग करने के लिये बैठे कि) सारा शरीर और गला सीधा रहे, हिलने डोलने न पावे (बल्कि) बिल्कुल स्थिर रहे और अन्य किसी भी दिशा की ओर न देखता हुआ केवल अपने नासिका के अगले भाग को देखता हुआ, (ओ३म् का जप और प्रणायाम करता रहे) वह शरीर को ऐसा अचल रखे जैसे दीपकों की ज्योति हवा न चलने पर स्थिर रहा करती है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ३२)

संगति- उससे भी और श्रेष्ठ उपाय परमात्मा को जल्दी पा जाने का बतलाते हैं-

अर्थ-हे अर्जुन ! जो कोई अपने उपमा से सब जगह सब लोगों को (अपने ही) समान सुखी-दुःखी[1] देखता है वह "परम् योगी" माना जाता है।

---

१. अर्थात् यह समझता है कि जैसे मैं दुःख नहीं पसन्द करता, उसी प्रकार अन्य लोग भी नहीं पसन्द करते, अतः जैसे मैं अपने दुःखों को दूर हटाने का यत्न करता रहता हूं, इसी प्रकार मेरा कर्तव्य है कि दूसरों के दुःख निवारणार्थ भी पुरुषार्थ करता रहूँ। ऐसे परोपकारी योगी से परमात्मा अवश्य प्रसन्न होंगे। अर्जुन भी परोपकारी धर्मात्मा युधिष्ठिर की रक्षा निमित्त युद्ध करे तो वह "परम्योगी" माना जा सकेगा, यह अभिप्राय श्रीकृष्ण जी का है।

यो मां पश्यति सर्वत्र च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।३२।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ३०)

संगति- और भी सर्वश्रेष्ठ उपाय परमात्मा की प्राप्ति का बतलाते हैं-

अर्थ- जो कोई (योगी या भक्त) मुझ (परमात्मा) को सब जगह और सबको मुझमें देखता है[1] उसको मैं (परमात्मा) नहीं नाश[2] करता हूं और न वह मुझको नष्ट[3] करता है।[4]

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।३४।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ४, ६)

संगति- अब परमात्मा में श्रद्धा उपजाने के लिए उसकी महिमा वर्णन करते हैं-

अर्थ-मेरी (परमात्मा की) आठ प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ (शक्तियाँ) है उनके नाम सुनो- (१) भूमि (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) मन (७) बुद्धि (८) अहंकार[5]।

---

१. अर्थात् परमात्मा को सर्वव्यापक माना जाता है।

२. नाश तो जीवात्मा का होता ही नहीं कयोंकि वह अजर, अमर है; परन्तु यहाँ "नाश" से अभिप्राय पतित होने, गिरने या नरकगामी होने का है।

३. परमेश्वर को नष्ट करना यह है कि उसको भूल जाना तथा उसकी आज्ञा के विरूद्ध काम करना।

४. इस पर श्रुति यह है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।६।

(ईशोपनिषद ६ तथा यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ७)

५. इस पर यह श्रुति है-

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी।।

(मुण्डक उपनिषद २-१-३)

मैं (परमेश्वर) ही इस सारे (उक्त आठ प्रकृतियों वाले) जगत की रचना और प्रलय करने वाला हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोक्तम्। सूत्रे मणिगणा इव।।३५।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ७)

संगति-परमात्मा का और भी महत्व दर्शाते हैं-

अर्थ- हे धनंञ्जय ! मुझ (परमात्मा) से बढ़कर और कोई भी नहीं है[1] (मुझमें ही) यह सब सूत में मणियों की भाँति पिरोया हुआ है[2]।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय! प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।३६।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ८)

संगति-किस प्रकार पिरोया है सुनो-

अर्थ-हे कौन्तेय ! मैं पानी में रस (रूप से मौजूद) हूं । चन्द्र-सूर्य में प्रभा (किरण या प्रकाश) हूं । सब वेदों में श्रवण करने योग्य (ओ३म) हूं । आकाश में शब्द हूँ और मनुष्यों में पुरुषार्थ[3] हूँ।

---

(१) इस पर श्रुति है-

"तदुनात्येति कश्चन............"

(कठोपनिषद ४- ९)

(२) इस श्लोक का एक पाद मूल में नहीं है, वर्तमान गीता में "मयि सर्वमिदं प्रोतं" है। अर्थ इसका मैंने कोष्ठक में रख दिया है क्योंकि बिना इसके आशय नहीं खुलता।

(३) अर्थात् प्रत्येक वस्तु का जो सारांश तत्व या जौहर है उसी को परमात्मा की सत्ता समझो।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।। ३७।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ९)

अर्थ-पृथिवी में मैं उत्तम सुगन्ध हूँ, अग्नि में तेज (रूप से विद्यमान) हूं। सब भूतों (प्राणियों) में जीवन हूं। और तपस्वियों में तप, (रूप से विराजमान हो रहा) हूं।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
बलं बलवतां चाहम[1] कामरागविवर्जितम्[2] ।।३८।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक १० व ११)

अर्थ- बुद्धि वालों में बुद्धि, तेज वालों में तेज और बल वालों में काम और राग से रहित बल मैं ही हूँ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः[3] ।।३९।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक १६, १९)

संगति- ऐसे महान प्रभु परमात्मा को कौन लोग स्मरण करते है? सुनो-

अर्थ-हे अर्जुन! चार प्रकार के सुकृति (धर्मात्मा) लोग मुझ (परमेश्वर) को भजते है। (१) आर्त (दुखी), (२) जिज्ञासु (ब्रह्म को जानने की इच्छा वाले), अर्थी (कामना

---

१. "चाहम्" के स्थान में वर्तमान गीता का पाठ "चास्मि" है।

२. यह अन्तिम पाद मूल में नहीं है, वर्तमान गीता से मैंने उद्धृत कर दिया है।

३. यह पाद मूल में नहीं है, मैंने वर्तमान गीता से उद्धृत कर दिया है।

वाला-ख्वाहिशमन्द) और हे भारतवंशी ! चौथा ज्ञानी। फिर उन सबमें कौन बढ़कर है? वह पूर्ण ज्ञानी महात्मा, जो यह समझ लेवे कि सब कुछ[१] वासुदेव[२] (परमात्मा) ही हैं।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥४०॥

(वर्तमान भगवदगीता अध्याय ७ श्लोक २९)

संगति- फिर उस महात्मा का आगे का कार्य बतलाते है-

अर्थ- जो लोग जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से छूट जाने (मुक्ति पाने) के लिए मेरा (परमात्मा का) सहारा लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को और सब कर्मों को जान लेते हैं[३]।

---

१. सब ब्रह्म है........ और सब में ब्रह्म है........ ये दो पक्ष अद्वैत और द्वैतवादियों के हैं। द्वैतवादी ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म को सब में व्यापक देखता-देखता सबको ब्रह्म ही मानने लग जाता है। देखों श्लोक सं. ४५ की टिप्पणी ।

२. इस शब्द का समास इस प्रकार है-

वासयति छादयति स्व प्रकाशेन इति वासुः। स्व -
प्रकाशेन दीव्यतीति देवः। स चासौ देवश्च वासुदेवः।

भावार्थ- जो अपने प्रकाश से ढांकता है वह 'वासु' कहलाता है और जो अपने प्रकाश से चमकता है वह 'देव' कहलाता है, इस प्रकार वासुदेव शब्द परमात्मावाचक रूप में आया है।

३. जान लेने से अभिप्राय साक्षात्कार कर लेने का है। जिस प्रकार हम लोग मिठाई को जिह्वा पर रखते ही उसके स्वाद का अनुभव (साक्षात्कार) करते हैं, उसी प्रकार जो लोग ब्रह्म परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे होंगे वे ही ब्रह्म को जान लेने वाले कहे जायेंगे। अर्जुन यह सब जानकर क्या करे?

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।४१।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक ५)

संगति- फिर वह महात्मा मुक्ति को कैसे पा सकता है? यह बतलाते हैं।

अर्थ-जो कोई अन्तकाल (मरते समय) मेरा (परमात्मा ही का) स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ जाता है, वह मेरे भाव (मुक्ति धाम) को पा जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है[1].

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।४२।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक ७)

संगति- अतः वह उपाय बतलाते हैं कि मरते समय ईश्वर में मन लगा रहे।

अर्थ-इसीलिए सब काल में[2]. मुझ (परमात्मा) में मन और बुद्धि को अर्पित[3]. करके मुझको ही स्मरण करता हुआ युद्ध करे

---

१. अर्जुन परमात्मा को अपना मालिक प्रभु मानता हुआ उसको सर्वव्यापक देखने लग जाये तो यह भेद समझ पायेगा कि कुरुक्षेत्र के संग्राम भूमि में उसको उसके प्रभु ने ला खड़ा किया था, अतः युद्ध से पीछे हट जाना प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करना ही था।

इस पर यह श्रुति है-

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्ध सत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

(मुण्डक उपनिषद ३-६)

२. क्योंकि मरते समय तभी ब्रह्म की याद आयेगी जब जन्म भर उसका मनन करता रहेगा।

३. कैसे अर्पण करें? मन में सिवाय ब्रह्म के और किसी का मनन न करें और बुद्धि से किसी अन्य का चिन्तन न करे, यह कार्य अत्यन्त कठिन तो है पर अभ्यास से सुलभ होगा।

तो[१] निस्सन्देह मुझको ही पा जायेगा, अर्थात मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

सर्वद्धाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।४३।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक १२)

संगति-कैसे स्मरण करे? सुनो-

अर्थ- सब द्वारों (आँख कान... आदि) को संयम करके, मन को हृदय में रोककर अपने प्राणों को मूर्धा (शिर) में चढ़ाकर योगाभ्यास में लग जाये[२]।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।४४।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ९ श्लोक १)

संगति- अब उससे और बढ़िया अधिक ज्ञान सुनाने की प्रतिज्ञा करते हैं-

अर्थ-हे निष्पाप अर्जुन ! तुझको हम अब इससे भी और उत्कृष्ट ज्ञान, जो विज्ञान के सहित है, सुनाते हैं जिसको जान

---

१. यहां स्पष्ट ही अर्जुन को कह दिया गया है कि वह परमात्मा का पाना (मुक्तिधाम को जाना) चाहता हो, तो भगवान का भजन करता हुआ ही युद्ध में लगा रहे।

कैसे? वह बाण में, धनुष में, लक्ष्य में तथा अपने भीतर-बाहर सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म को व्यापक देखता रहे और यह मानकर युद्ध में डटा रहे कि मुझे मेरे प्रभु परमात्मा ने इस कार्य में लगा रखा है।

२. उस दशा में आत्मा से परमात्मा का ध्यान तथा उसके "ओ३म" नाम का जप करे। इस पर यह श्रुति है-

यः पुनारेतत् त्रिमात्रमित्यनेनैवाक्षरेण परं।
पुरुषमभिध्यायीत स तमधिगच्छति।।

करके तू अशुभ बातों से छूट जायेगा[१]।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥
वेद्यं पवित्रोंकार ऋक् साम यजुरेव च॥४५॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ९ श्लोक १६व १७)

संगति- वह ज्ञान यह है कि-

अर्थ-मैं (परमात्मा) "यज्ञ" हूँ, मैं ही "क्रतु[२]" हूँ, मैं ही "स्वधा[३]" हूँ मैं ही औषधि" (हवन सामग्री) हूँ, मैं ही "मन्त्र" हूँ, मैं ही "आज्य" (धृत) हूँ, मैं ही (यज्ञ की) "अग्नि" हूँ, और यज्ञ में आहुत हुआ सामान (भी) मैं ही हूँ[४], मैं ही जानने योग्य पवित्र "ओंकार[५]" हूँ, और मैं ही ऋक्, साम "यजुर्वेद[६]" भी हूँ।

---

१. वह परम् ज्ञान परब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक देखने का अभ्यास करना ही है, अतः अगले श्लोक को पाठक ध्यान से पढ़ें।

२. क्रतु से बड़े-बड़े यज्ञ अश्वमेधादि से अभिप्राय है।

३. "स्वधा"-पितरों सम्बन्धी यज्ञ सामग्री।

४. अभिप्राय यह है कि सब वस्तुओं में परमात्मा को व्यापक देखो, यहाँ तक कि परमात्मा से पृथक कुछ भान ही न हो। इतना अधिक परमात्मा में लवलीन होकर उसी में तन्मय हो जाना ही ऐसा ज्ञान है जो सर्वोत्तम है और पूर्वश्लोक में इसी के खास उपदेश देने का वादा किया गया था।

५. इस पर यह श्रुति है-

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः। स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ओमित्येवं धयायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥६॥

(मुण्डक उपनिषद २-६)

६. तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
सवंत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः॥

(मुण्डक उपनिषद २-१-६)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्पस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।४६।।

(वर्तमान भगवद्गीता गीता ९ श्लोक २७)

संगति- जो इस प्रकार ब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक जान ले तो फिर वह क्या करे? सुनो-

अर्थ- हे कौन्तेय ! जो काम तू करे, जो कुछ खाये, जो कुछ होम करे, जो कुछ दान करे, और जो कुछ तपस्या करे, वह सब (उन पुण्य- कर्मों का फल) मुझे (परमात्मा को) अर्पण कर दे[1]।

ज्योतिषामृहमंशुमान्[2], नक्षत्राणामहं शशि।।४७।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २१)

संगति- पूर्व श्लोक संख्या ४५ में जो अपूर्व ज्ञान परमात्मा का सर्वव्यापक होना कहा है, उसी की व्याख्या यहां से श्लोक संख्या ५३ तक में करते हैं। अर्थात् यह बतलाते हैं कि परमात्मा को किस वस्तु में किस रूप में देखे !

अर्थ-ज्योति (प्रकाश) वालों में मैं किरणों वाला (सूर्य) हूँ। नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
महर्षीणां भृगुरहं, मेरुः शिखरिणामहम्।।४८।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २३ व २५)

अर्थ- रुद्रों में मैं शंकर हूँ, यक्ष राक्षसों में मैं नारद हूँ। महर्षियों में मैं भृगु हूँ और शिखरवालों में मैं मेरु पर्वत हूँ।

---

१. अर्थात निष्काम भाव से कर्म करता रहे। कर्म का फल परमात्मा को अर्पण कर देने से यह परिणाम होगा कि उनसे होने वाले सांसारिक सुख न मिलेंगे किन्तु मुक्ति से निकटता होती चली जायेगी।

२. वर्तमान गीता में इस "अहम्'" के स्थान में "रवि" पाठ है।

अश्वत्थ:सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद:।
उच्चैः श्रवसमश्वानां सिद्धानां कपिलो मुनि:।।४९।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २६ व २७)

अर्थ- सब वृक्षों में मैं पीपल हूँ, देवऋषियों में मैं नारद हूँ। घोड़ों में मैं उच्चै:श्रवा (ऊँचे कानों वाला घोड़ा) हूँ। सिद्ध लोगों में मैं कपिल मुनि हूँ।

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।
आयुधानामहं वज्रं सर्पाणामस्मि वासुकि:।।५०।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २७ व २८)

अर्थ- हाथियों में मैं ऐरावत हूँ, मनुष्यों में मैं राजा हूँ। आयुधों (शस्त्रों) में मैं वज्र हूँ। और सर्पों में मैं वासुकि हूँ।

वरूणो यादसामहम्, यमः संयमतामहम्।
प्रह्लाद[१] सर्वदैत्यानां कालः कलयतामहम्[२]।।५१।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २९ व ३०)

अर्थ- पानी के जीवों में मैं वरूण हूं, नियमन (न्याय) करने वालों में मैं यम हूं। सब दैत्यों में मैं प्रहलाद हूँ, गणना करने वालों में मैं काल हूँ।

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।
अक्षराणामकारोऽस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकर:।।५२।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ३० ३१, ३३ और ३५)

---

१. यह चौथा पाद मूल में नहीं है, मैंने वर्तमान गीता से उद्धृत कर दिया है।

२. वर्तमान गीता में "प्रह्लादश्चास्मि" पाठ है।

अर्थ- वन के पशुओं में मैं सिंह हूँ। पक्षियों में मैं गरूड़ हूँ, अक्षरों में मैं "अ" हूँ। शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। महीनों में मैं मार्गशीर्ष (अगहन) तथा ऋतुओं में बसन्त हूँ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥५३॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ३७)

अर्थ-वृष्णी वंशवालों में मैं वासुदेव अर्थात् श्री कृष्ण हूँ। पाण्डवों में मैं अर्जुन हूँ। मुनियों में मैं व्यास हूँ। और कवियों में मैं उशना कवि हूँ।

"औषधिनाम्[१.]"।
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप॥५४॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ४०)

अर्थ- हे बड़े तपस्वी अर्जुन ! (निदान कहाँ तक गिनायें, वस्तुतः तो) मेरे (परमात्मा के) इन दिव्य विभूतियों का अन्त ही नहीं है[२.]।

१.यह एक ही शब्द है, अर्थ "औषधियों का" होगा। वर्तमान गीता में यह शब्द कहीं भी नहीं है।

२. परमात्मा अनन्त है, उनकी विभूतियाँ भी अनन्त ही हैं। यहां जो थोड़ी-सी दिग्दर्शन कराई गई, इतने से जिज्ञासु और अनेक विभूतियों को समझ सकता है कि सर्वत्र प्रत्येक वस्तु में, जर्रे-जर्रे में, परमात्मा को ही रमा हुआ देखकर सर्वत्र उसको नमस्कार करे।

यजुर्वेद के १६वें अध्याय में यही उपदेश है कि प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को नमस्कार करे। परमात्मा के सबमें व्यापक होने की व्याख्या बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण में अति उत्तम आई है

क्रमशः ....

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥५५।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५)

संगति- जो परमात्मा को उक्त प्रकार सबमें व्यापक देखने का अभ्यासी हो जाये, उसके लिए और आगे का मार्ग दर्शाते हैं:-

अर्थ-हे अर्जुन ! (मेरी विभूतियों को समझ लेने पर अब) तू

पिछले पेज का शेष.........

जिसका एक मन्त्र निम्न प्रकार है-

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरों यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

(बृहदारण्यक उपनिषद ३-२)

इसी प्रसंग में श्रीमान "कन्नोमल जी एम.ए." अपने "गीतादर्शन" नामक पुस्तक के पृष्ठ संख्या ७२ पर कहते हैं-

पिक और कोकिला के मधुर गान में वही है, पुष्पवाटिका की सुगंधि में वही है। नवयौवना के सुन्दर रूप में उसी की झलक है। मेघ के प्रचण्ड गर्जन में उसी का शब्द है।

नक्षत्रों की ज्योति वही है अन्तःकरण की शान्त वाणी में वही बोलता है। समुद्र के तुंग तरंगों में उसी की शक्ति है। भागीरथ के जलप्रवाह में उसी का उद्वेग है।

वक्ता के पदलालित्य में उसी का प्रभाव है। चित्रकार की लेखनी में उसी का महत्व है। शिल्पकार की टांकी में उसी की शक्ति का अविष्कार है। न्यायाधीश का वही न्याय है।

योद्धा का वही वीरत्व है। परोपकारी का वही धर्म है। सिंह का कोप, बकरी की दीनता, हिरन की चंचलता आदि ये सभी उसी की शक्ति के रूप हैं।

मेरे (परमात्मा के) अनेक प्रकार के रंगों और आकारों वाले सैकड़ों, हजारों रूपों को देख[1]।

न तु मां शक्ष्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ५६॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ८)

संगति- अब उस अद्भुत रूप वाले को किन आंखें से देखें यह बतलाते हैं-

अर्थ- परन्तु मुझ (परमात्मा) को तू इन आँखों (चर्म चक्षुओं) से तो नहीं देख सकता, (इसलिए) तुझको मैं "दिव्याचक्षु[2]"

---

१. नक्षत्रों में चन्द्रमा, वृक्षों में पीपल आदि देखते-देखते अब यह भावना धारण करो कि सर्वत्र परमात्मा विराजमान है।

न केवल चन्द्रमा में वरन् प्रत्येक नक्षत्र में वह मौजूद है।

न केवल पीपल में बल्कि प्रत्येक वृक्ष में और उसकी डाली-डाली और पत्ते-पत्ते में वह विराजमान हो रहा है।

इस "विश्वरूपदर्शन" का मुख्य अभिप्राय यही है कि मनुष्य परमात्मा को प्रत्येक वस्तु में अन्तर्यामी समझ कर उसको सर्वत्र नमस्कार करे।

इस पर यह श्रुति है-

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात॥

(यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १)

२. दिव्य चक्षु- खास प्रकार की आँखें-ज्ञान नेत्र ।

इस पर यह श्रुति है-

स आत्मा मनोऽस्य दवं चक्षुःसवा एष एतेन।
देवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते॥

(छान्दोग्योपनिषद ८- १२- ५)

देता हूँ। अब मेरे योग के ऐश्वर्य[१] को देख ।

अनेकवक्त्र नयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ ५७॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक १०)

संगति- वह रूप कैसा है? सुनो-

अर्थ- अनेकों मुखों[२] और आंखों वाला है और अनेकों प्रकार का दीखता है। अनेकों उसके दिव्य भूषण वस्त्र हैं। ओर अनेकों आयुधों (शस्त्रों) से वह सुसज्जित है।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा, विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥ ५८॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक २८)

---

१. इससे स्पष्ट है कि अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन श्री कृष्ण जी ने अपने योगबल से कराया था।

जो लोग यह समझते हैं कि अर्जुन ने किसी खास रूप का दर्शन किया होगा, उनको ज्ञात रहे कि यहाँ स्पष्ट कह दिया गया है कि "इन आँखों से तुम उस निराकार ब्रह्म को नहीं देख सकते।" इसीलिए श्रीकृष्ण जी ने अपने योगबल से अर्जुन के हृदय में अपना ज्ञान भर दिया (जिस प्रकार आजकल मिस्मेरिजम Mesmerism वाले लड़कों के आत्माओं पर अपना प्रभाव डाला करते हैं) यही दिव्य चक्षु दे देना था। अब ज्ञान की आँखों से अर्जुन ने देखा तो बह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक पाया, वही "विश्व-रूप दर्शन" है। लोकमान्य तिलक महाराज भी "गीता-रहस्य" के एक प्रकरण "अध्यात्म" में पृष्ठ २५० पंक्ति १ पर कहते हैं कि "गीता में वर्णित भगवान का अर्जुन को दिखलाया हुआ विश्वरूप भी मायिक ही था।"

२. इस पर श्रुति यह है:-

विश्वतस्चक्षरूत विश्वतो मुखो.......।

संगति- यह तथा अगला श्लोक अर्जुन की ओर से स्तुति रूप में है। परमात्मा का दर्शन कर लेने पर उसकी स्तुति कैसे करे? यह बतलाते हैं-

अर्थ- जिस प्रकार नदियों का जल-प्रवाह बड़े वेग के साथ समुद्र की ओर दौड़ा चला जाता है, उसी प्रकार (हे विराट् रूप भगवान !) ये मनुष्य लोग-शूर-वीर आदि (बड़े वेग से) आपके मुखों में प्रवेश करते चले जा रहे है[१]।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंग, विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥५९॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक २९)

अर्थ-जैसे जलते हुए दीपक की ओर कीट-पतंग व मच्छर आदि नाश होने के लिए बड़े वेग से दौड़े चले आते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी नाश होने (मरने) के लिए आपके मुख में बड़े वेग से घुसते चले जा रहे है[२]।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्वः नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते॥६०॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ३१, ३२, ३९ और ४०)

अर्थ- (हे बड़े अद्भुत रूप वाले!) आप ऐसे उग्र (तेज तर्रार-तीक्ष्ण, काल) रूप वाले कौन है ? (मैं समझता हूँ कि

---

१. मरने वालों के लिए परमात्मा काल रूप है। कुरुक्षेत्र के उस संग्राम भूमि में १८ अक्षोहिणी सेना मरने के लिए आ डटी थी, उसी का दृश्य अर्जुन को भासित हो रहा था कि ये सब मौत के मुंह में दौड़े चले जा रहे हैं।

२. ऊपरी बात की पुष्टि यहां दूसरे दृष्टान्त से भी की है।

यहां पर आप इन सब लोगों को समेट लेने के लिए प्रवृत्त हो रहे हैं!!! आपको नमः हो (नमस्ते) नमः हो, हजार बार नमः हो, आपको आगे से नमः हो, और पीछे से भी नमः होवे[१]।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥६१॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५३)

संगति- विश्वरूप दर्शन समाप्त हुआ; अब उसकी महानता प्रकट करते हैं-

अर्थ- हे अर्जुन ! मेरे (परमात्मा के) जिस अद्भुत रूप को तूने अभी देखा है, वह ऐसा है कि उसे कोई न तो वेदों को पढ़ने से, न तप से, न दान से और न यज्ञ करने से ही देख सकता है।[२]

मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥६२॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५५)

---

१. प्रत्येक मनुष्य को इसी प्रकार अर्जुन की भांति परमात्मा को प्रतिदिन (प्रातः सायंकाल की सन्ध्योपासना में) नमस्कार करना चाहिए।

इस पर श्रुति यह है-

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्न मिषवः। तेभ्यो दश प्राचीदंश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥

(यजुर्वेद अध्याय १६मन्त्र ६६)

२.इस पर यह श्रुति है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते
तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥

(मुण्डक उपनिषद ६-३)

संगति- फिर आखिर किसी प्रकार देख भी सकेगा इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-

अर्थ- हे पाण्डव ! जो कोई मेरे (परमात्मा के) लिए कर्म करता है (निष्काम कर्मी बनता है) मेरा (परमात्मा का) भक्त बन जाता है, सब भूतों (प्राणियों) से निर्वैर (शत्रुता न रखने वाला) और संग रहित (किसी से ज्यादा प्रेम न रखने वाला) बन जाता है, वह ही मुझ (परमात्मा) को पाता है। (परमात्मा का दर्शन कर लेता है[१.])।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते।। ६३।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक ३२)

संगति- ऊपर परमात्मा का दर्शन करने का उपाय बतलाया गया

---

१. इस श्लोक की टीका में श्री लोकमान्य पण्डित बालगंगाधर तिलक जी महाराज अपने "गीता-रहस्य" में कहते हैं-

उसे सारे व्यवहार इस निरभिमान बुद्धि से करना चाहिये कि जगत के सभी कर्म परमेश्वर के हैं, सच्चा कर्ता और कराने वाला वही है, किन्तु हमें निमित्त बनाकर वह हमसे कर्म करवा रहा है............।

शांकर भाष्य में भी यही कहा है कि-

इस लोक में पूरे गीता-शास्त्र का तात्पर्य आ गया है। इससे प्रकट है कि-

"गीता का भक्ति-मार्ग यह नहीं कहता कि आराम से बैठकर सिर्फ राम-राम जपा करो, प्रत्युत उसका कथन है कि उत्कृष्ट भक्ति के साथ ही साथ उत्साह से सब निष्काम कर्म करते रहो।

इस पर यह श्रुति है-

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यक्ष ब्रह्म समश्नुते।।

(कठ उपनिषद ६-१४)

है। अब कहते हैं कि उसकी खोज में हमें कहीं दूर देश- काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि- नहीं जाना पड़ेगा-

अर्थ- वह आत्मा (परमात्मा) सर्वत्र (देह के रग रग में) ठहरा हुआ है परन्तु इससे उसी प्रकार लिप्त नही होता जिस प्रकार आकाश सब जगह रहने पर भी सूक्ष्म होने से (किसी वस्तु के साथ) लिप्त नहीं होता[१.]।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥६४॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक ३३)

संगति- ऊपर आकाश का दृष्टान्त दिया गया, अब सूर्य का दृष्टान्त देते है-

अर्थ- जिस प्रकार अकेला एक सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता है। हे भारत ! उसी प्रकार वह क्षेत्रों[२] (परमात्मा इस सारे

---

१. इसलिए उसका दर्शन करने के लिए बाहर नहीं बल्कि अपने हृदय के अन्दर और आत्मा के भी अन्दर ही ढूंढो।

(देखो श्लोक ४३)

इस पर यह श्रुति है-
आकाशो व नाम नाम रूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तदब्रह्म।
तदमृतं स आत्मा प्रजापतेः सभां वैश्य प्रपद्ये.....................॥

(छान्दोग्योपनिषद ८-१४-१)

२. इस श्लोक में क्षेत्र-क्षेत्री पारिभाषिक शब्द आये हैं। श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का भाष्य इस प्रकार है-

क्षेत्रम् महाभूतादि घृत्यन्तम।

भाषार्थ-महाभूतों को आदि से ले के धृतिपर्यन्त (समुदाय रूप) क्षेत्रों = परमात्मा।

क्षेत्र) समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रहा है[१]।

सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥ ६५॥

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक ९)

संगति-परमात्मा के दर्शन की दृढ इच्छा कैसे हो सकती है? यह बतलाते हैं-

अर्थ - हे भारत ! (तीन गुण मनुष्य के शरीर के अन्दर रहते हैं-सत्व, रजः, तमः) सत्व गुण जब बढ़ जाता है तो सुख में लगाता है। रजो गुण कर्म में लगाता है। और तमो गुण ज्ञान को छिपा करके प्रमाद (आलस्य) में लगा देता है[२]।

---

१. पूर्व श्लोक में आकाश तथा इस श्लोक में सूर्य के दृष्टान्त से उस परब्रह्म परमात्मा के सर्वव्यापक होने का सिद्धांत समझाया गया है। एक बात स्मरण रखने योग्य है कि पूर्व श्लोक में जहां परमात्मा का हमारे शरीर में व्यापक होना दर्शाया है, वहां इस श्लोक में उसका समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान होना कथन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि प्रथम अपने शरीर के रग रग में उसको हम देखें फिर सर्वत्र देखने का अभ्यास करें।

इस पर यह श्रुति है-

सूर्य्यो यथा सर्व्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥

(कठ उनिषद ५-११)

२. इसलिए जो कोई अपना भला चाहे(परमात्मा का दर्शन करना चाहे) वह तमो गुण को बढ़ने न देवे, तामसी पदार्थों को खाने तथा तमोगुणी लोगों की संगति में रहने से तमो गुण बढ़ेगा अतः उनसे बचा रहे।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥६६॥

(वर्तमान भगवद्‌गीता अध्याय १४ श्लोक १८)

संगति- उन तीनों गुणों का फल सुनो-

अर्थ-सत्व गुण वाले ऊपर[1] को जाते हैं। रजो गुण वाले मध्य में रहते हैं और खराब वृत्तियों वाले तमोगुणी लोग नीचे[2] को जाते हैं।

समदुःख-सुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः॥६७॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥६८॥

(वर्तमान भगवद्‌गीता अध्याय १४ श्लोक २४ व २५)

संगति- ऊपर तीनों गुणों का विवरण सुनाकर अब यह उपदेश देते हैं कि परमात्मा का दर्शनाभिलाषी **"गुणातीत"** बन जाये।

अर्थ-गुणातीत (उक्त तीनों गुणों की पहुंच से आगे बढ़ जाने वाला) वह कहलायेगा, जो सुख-दुःख को बराबर समझ ले, जो स्वस्थ अपने अन्दर रमण करने-वाला हो, जो ढेला, पत्थर, सोना, चाँदी को समान मानता हो; जो प्रिय और अप्रिय को

---

१. "ऊपर" से यहां अभिप्राय ऊँचा दरजा, उच्च पद या उन्नतावस्था से है। इसी प्रकार "नीचे" से पतित दशा समझो।

२. इसलिए उन्नति (परमात्मा का दर्शन) चाहते हो, तो सत्व गुणी बनो, अच्छे धर्मात्मा सज्जन लोगों की संगति में रहने तथा सात्विकी भोजन खाने आदि से सात्विकी स्वभाव वाले बनोगे।

बराबर समझता हो, धीर (धैर्य रखने वाला) हो जो अपनी निन्दा और स्तुति को बराबर मानता हो।।६७।।

जो मान और अपमान को तुल्य (एक समान) जानता हो, जो मित्र-शत्रु के पक्ष को तुल्य रखता हो, और (सबसे बढ़ कर यह कि) जो सब (प्रकार के) कार्यों का त्याग[1] कर चुका हो (ऐसा महात्मा) परमेश्वर का दर्शन करने का पात्र माना जायेगा।।६८।।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।६९।।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक २६)

संगति- उक्त प्रकार गुणातीत बन जाने का फल बतलाते हैं-

अर्थ-जो कोई अव्यभिचारी (डाँवाडोल न होने वाली) भक्ति योग द्वारा मेरी (परमात्मा की) सेवा (उपासना) करता है वह इन (तीनों) गुणों को पार करके मुक्ति को पा जाता है[2]।

---

१. सब कार्यों को त्यागने से अभिप्राय सांसारिक कार्यो जैसे खेती, व्यापार, राज्य-शासन आदि- को त्यागने से है, किन्तु जप, तप, स्वाध्याय योगाभ्यास- आदि ऐसे कार्य नहीं हैं, जिनका त्याग किया जाये।

इस पर यह श्रुति है-

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् स्तोमं।
महदुरु गायं प्रतिष्ठा दृष्ट्वा धृत्वा धीरो नचिकेतीत्यस्त्राक्षीः।।

(कठोपनिषद ३०२- ११)

२. इस पर यह श्रुति है-

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयःऽयुद्ध सत्वा।
ते ब्रह्म लोकेषु परांत काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

(मुण्डक उपनिषद ६-६)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥७०।

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १८ श्लोक ६६)

संगति- जो महात्मा गुणातीत बन गया हो वह फिर क्या करे? यह बतलाते हैं-

अर्थ- सब धर्मों को छोड़कर केवल एक मेरी (परमात्मा की) शरण में आ जा, मैं तुझको सब पापों से छुड़ा दूंगा, शोच (चिन्ता, फिक्र) मत कर[१]।

प्रश्न- क्या परमेश्वर पाप को माफ कर देंगे, उसका फल नहीं भुगायेंगे?

उत्तर- योग (ध्यान, धारणा, समाधि) तथा ज्ञान रूपी अग्नि में पाप रूपी मल दग्ध हो जाता है। यही बात उपनिषदों में कही

---

१. इस श्लोक से बहुत लोग भारी भ्रम में पड़ गये हैं कि यह कैसा उपदेश है कि "सब धर्मों को छोड़ देवे"। परन्तु अब उन्हें जानना चाहिए कि वर्तमान भगवद्गीता के इस १८वें अध्याय के अन्तिम श्लोक की संगति १४वें अध्याय के ऊपरी २६वें श्लोक के साथ मिलाने से स्पष्ट यह अभिप्राय निकल आता है कि यह उपदेश (सब धर्म छोड़ने का) और किन्ही लोगों को नहीं दिया गया, बल्कि "गुणातीत" लोगों को ही यह आदेश है।

उनके लिए और आगे का मार्ग दर्शाया गया है कि वह सुख-दुःख के बराबर होने, मित्र-शत्रु में भेद न होने और सर्वत्र ब्रह्म को व्यापक देखने का अभ्यास करते-करते अब और आगे बढ़े और वर्णाश्रम के धर्मों और कर्त्तव्य कर्मों के बन्धन की परवाह छोड़कर सारा समय और अपनी सारी शक्ति ब्रह्म में तन्मय हो जाने (समाधि आदि) में लगा दे (उसके शरण में चला जाना यही है) तो परमात्मा उस पर कृपा करके उसको अपना लेंगे और पापों से छुड़ा देंगे।

गई है, यथा-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशयाः।
क्षीयन्ते चात्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक उपनिषद ४-८)

भला जी! अर्जुन इस पर कैसे अमल करता ? अर्जुन को यह कहा गया है कि तू अभी तो अपने वर्णाश्रम धर्म में बंधा हुआ है।

इसीलिये इस रणक्षेत्र में आ जाने से इस युद्ध में भाग ले। फिर विजय होने पर यज्ञ-दानादि शुभ कार्यों को करता हुआ निष्काम कर्मी बन जाना, पश्चात् "गुणातीत" बनने का अभ्यास करना और उसके पश्चात् इस श्लोक पर अमल दरामद करके मुक्ति का अधिकारी बन जाना।

इस प्रकार यह उपदेश अर्जुन को उसके जन्म भर के लिए दे दिया गया था।

नोट- इस श्लोक पर एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस प्रकार विद्यार्थी को क्रमशः एक-एक कक्षा की पुस्तकें पढ़ाई जाती है और आगे की पाठ्य पुस्तकें कठिन होती जाती हैं किन्तु प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को एम.ए. कक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता।

उसी प्रकार यों समझना चाहिए कि इस अन्तिम श्लोक की शिक्षा उनके लिए है, जो मुक्ति रूपी कालिज के एम.ए. क्लास में पहुंच गये हैं।

साधारण कक्षा वाले (वर्णाश्रम धर्मी) से इस उपदेश का कुछ

भी सरोकार नहीं हैं, वह इस पर आरूढ़ होना चाहेगा तो-

"इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः"- बन जायेगा, इसलिए भ्रम छोड़कर गीता शास्त्र के अपूर्व उपदेशों पर अमल करते हुए कल्याण को प्राप्त करो।

इति "मंगलानन्द पुरी संन्यासिना" सम्पादिता आर्य
भाषा सहिता यव द्वीपान्तर्गत "बाली" द्वीपात्
प्राप्ता सप्तति श्लोक युक्ता श्रीमत्
(प्राचीन-महाभारत कालीन)
भगवदगीता समाप्ताः
॥ इत्योम् शान्तिः॥

नोट- गीता एवं उस पर आधारित शोधग्रन्थ प्राप्त करने के लिए आप प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित करें जिनमें से कुछ मुख्य-मुख्य पुस्तकों की सूची निम्न प्रकार है-

१. गीता विवेचन (गीता विवेचन स्वरूप का दिग्दर्शन)	डा० श्री राम आर्य	२५०.००
२. गीता पर ४२ प्रश्न	"	६.००
३. श्रीमद्भगवद गीता	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१८०.००
४. श्रीमद्भगवद् गीता रहस्य	बाल गंगाधर तिलक	८७५.००
५. भगवद्गीता भाष्य	स्वामी समर्पणानन्द	१५०.००
६. श्रीमदभगवद् गीता	डा.० राधाकृष्णान्	१७०.००

अन्य भी किसी गीता भाष्य की आवयश्कता हो तो आप पत्राचार कर मालूम कर सकते हैं।

"प्रबन्धक"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग